साम्राज्यवाद और इराक

I

'' इजारेदारियां, अल्पतंत्र, स्वतंत्रता की चेष्टा के बजाय प्रभुत्व की चेष्टा, मुट्ठी भर सबसे धनवान तथा सबसे ताकतवर राष्ट्रों द्वारा बढ़ती हुई संख्या में छोटे या कमजोर राष्ट्रों का शोषण - इन सबने साम्राज्यवाद की उन लाक्षणिक विशेषताओं को जन्म दिया है, जिनके कारण हमें उसको परजीवी अथवा ह्रासोन्मुख पूंजीवाद कहने पर विवश होना पड़ता है।'' (लेनिन,साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था, संकलित रचनाएं, चार खण्डों में, खण्ड-2, पृष्ठ-155, पैरा-3, प्रगति प्रकाशन, मास्को)

लेनिन ने साम्राज्यवाद की जिन लाक्षणिक विशेषताओं की चर्चा की है, उनमें से एक है-''स्वतंत्रता की चेष्टा के बजाय प्रभुत्व की चेष्टा''। इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि साम्राज्यवाद अपने प्रभुत्व की चेष्टा को कितना पवित्र नाम देता है। किन ''पवित्र'' शब्दों से अपने कृत्यों को जायज ठहराता है। यह कहने की बात नही है कि इराक में साम्राज्यवादियों द्वारा जो किया गया, जो किया जा रहा है वो स्वतंत्रता की नहीं प्रभुत्व की चेष्टा है।

''आपरेशन इराकी फ्रीडम'' के नाम से अमेरिकी-ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने इराक पर 20 मार्च,2003 को हमला बोल दिया। इराक और इराक की अकूत तेल सम्पदा पर कब्जा, स्वतंत्रता नामक ''पवित्र'' शब्द की आड़ में हुआ। 20 मार्च के पहले और बाद में ऐसे ही कई, ''पवित्र'' शब्दों और ''पवित्र'' संस्थाओं की धज्जियां उड़ाई गयी। जिस पर कई कूपमण्डूकों ने बड़ा रोना-धोना मचाया। तमाम साम्राज्यवादियो के आपसी समीकरणों में ''पवित्र'' शब्दों को खूब जोर-शोर से उछाला गया। धूर्त बुश तो यहाँ तक उतर आया कि कहने लगा वह ''दैवीय मिशन'' पर है। जिसकी दुनिया की जनता के साथ साम्राज्यवाद के अमेरिका विरोधी धड़े ने भी खूब आलोचना की। पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के इतिहास को देखा जाय तो ''पवित्र'' शब्दों के क्रियाकर्म की यह कोई पहली घटना नहीं है। पूंजीवाद का आज तक का इतिहास ऐसा ही रहा है और ऐसा ही रहेगा।

अप्रैल का दूसरा सप्ताह आते-आते इराक में सद्दाम हुसैन की सत्ता बिखरने लगी और बगदाद में अमेरिकी व ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की सेना और टैंक बिचरने लगे। इराकी जनता का प्रतिरोध जारी है। रोज ही इराक के विभिन्न शहरों में अमेरिकी व ब्रिटिश फौजों के खिलाफ प्रदर्शन हो रहे हैं। जनता के कई प्रगतिशील हिस्सों में यह नारा लोकप्रिय हुआ है, '' नो टू इम्पीरिल्ज्म ,नो टू इस्लाम, नो टू अमेरिका, नो टू सद्दाम''

अमेरिकी साम्राज्यवादी इराक पर नियंत्रण करने में सफल नहीं हो रहे हैं। एक के बाद दूसरा प्रशासक नियुक्त किया गया पर हालात काबू में नहीं आ रहे हैं और अफगानिस्तान की तरह उपयुक्त हामिद करजाई अभी तक नहीं मिला है।

22 मई को संयुक्त राष्ट्र संघ ने अमेरिका और ब्रिटेन को उन्हीं के द्वारा पेश किये गये एक प्रस्ताव के द्वारा इस बात का ''मेण्डेट'' दे दिया कि वो अनिश्चितकाल तक इराक पर नियंत्रण रख सकें तथा इराक पर 13 साल से जारी आर्थिक-व्यापारिक प्रतिबन्ध भी हटा दिये। इराक पर थोपे गये साम्राज्यवादी युद्ध और प्रतिबन्धों ने हजारों इराकियों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीके से काल के मुंह में ढकेल दिया है।

इराक की तेल सम्पदा और इराक पर कब्जे के लिये किये गये इस साम्राज्यवादी हमले की पूरी दुनिया में जोरदार मुखालफत हुयी। लाखों की संख्या में जनता यूरोप तथा अमेरिका के विभिन्न शहरों में सड़कों पर उतर आयी। इक्कीसवीं

सदी के भावी वर्षों के लिये, यह एक इशारा है। यह अनायास नहीं है कि 'न्यूयार्क टाइम्स' को यह कहना पड़ा कि दुनिया में दो महाशक्ति हैं पहली, अमेरिका तथा दूसरी, विश्व-जनमत। अभी हम इस सवाल की तह में नहीं जा रहे हैं कि यह विश्व जनमत किन वर्गों से निर्मित था, कौन-कौन सी विचारधारायें इसके पीछे सक्रिय थीं। विभिन्न देशों के शासक वर्ग का इसमें क्या रोल था ? आगे के पृष्ठों में इस सवाल को उठाया गया है।

बीसवीं सदी में इराक का इतिहास, साम्राज्यवादियों के साथ निरन्तर संघर्ष का इतिहास है। 1932 से 1958 तक एक दौर रहा है तो 1958 से 1968 तक का दूसरा दौर, 1968 से 1980 का तीसरा दौर, 1980 से 1990 चौथा दौर, 1990 से 2003 तक पांचवां दौर। इन दौरों की कुछ विशिष्टतायें रहीं हैं। जो इन दौरों को एक दूसरे से अलग करती हैं, साथ ही यह इस बात की गवाह भी है कि साम्राज्यवाद का तीसरी दुनिया से सम्बन्ध कैसे विभिन्न चरणों से होकर गुजरा है। औपनिवेशिक चरण से आर्थिक नव- औपनिवेशिक चरण के इतिहास को इराक के इतिहास से भली-भांति समझा जा सकता है। इतिहास की ठोस समझदारी से ही आज के साम्राज्यवादी हमले और कब्जे को समझा जा सकता है तथा जो संक्रमणकालीन अवस्था आज इराक में दिखायी दे रही है, उसका ठोस आकलन किया जा सकता है। भविष्य में, ऊंट किस करवट बैठेगा इसका आकलन, दुनिया में वर्ग-शक्तियों के आकलन, साम्राज्यवादियों के आपसीअन्तरविरोध, अमेरिकी-साम्राज्यवाद के संकट, तीसरी दुनिया के बुर्जुआ शासकों की भूमिका, दुनिया तथा इराक की जनता के प्रतिरोध के आधार पर किया जा सकता है। इसी का प्रयास आगे के पृष्ठों में किया गया है।

तेल आज की दुनिया का सबसे महत्वपूर्ण माल है। तेल पर इजारेदारियां कायम है। इन इजारेदार घरानों के बीच इसको लेकर तीखी प्रतिद्वन्द्विता है। अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन,रूस तथा अन्य साम्राज्यवादी देशों के इजारेदार घराने, तेल सम्पदा के स्रोतों और बाजारों पर कब्जे को लेकर तीखी गलाकाटू प्रतियोगिता में उतरे हुए हैं। एशिया और अफ्रीका के कई हिस्सों में इस कारण गम्भीर राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक संकट जन्म लेते रहे हैं। नाइजीरिया, चाड, अंगोला, वेनेजुएला,अफगानिस्तान आदि मुल्कों के बाद इराक में साम्राज्यवादी देशों के हस्तक्षेप को इन इजारेदार घरानों की तीखी प्रतिद्वन्द्विता तथा इन घरानों के संरक्षक राज्यों के आपसी सम्बन्धों में आते उतार-चढ़ाव में देखा जा सकता है तथा इसी प्रतिद्वन्द्विता का इराक पर पड़े प्रभाव तथा इसको लेकर चल रही रस्साकशी का विश्लेषण आगे के पृष्ठों में किया जाना है।

यूरो का एक मुद्रा के रूप में उभरना तथा शुरू में डालर के मुकाबले कमजोर परन्तु बाद में लगातार मजबूत होते जाने का भी प्रभाव यूरोपीय यूनियन और अमेरिका के आपसी सम्बन्धों पर तथा इराक पर कब्जे को लेकर पड़ा है, इस पर भी आगे के पृष्ठों में चर्चा की जानी है। डालर की सर्वशक्तिमत्ता को यूरो किस तरह से तोड़ रहा है, कितना तोड़ सकता है, इस पर विचार किया गया है।

सद्दाम का पतन तीसरी दुनिया के बुर्जुआ शासकों के साम्राज्यवाद के साथ रिश्तों को बतलाता है। सद्दाम के साथ इराकी जनता का खड़ा न होना, इसका द्योतक है कि जनता और तीसरी दुनिया के शासकों के हित अलग-अलग हैं। साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष की प्रकृति भी अलग-अलग है।

भारत के शासकों की इस पूरे घटनाक्रम के दौरान निभायी गयी भूमिका की भी इस आलेख में चर्चा की गयी है। भारत के बुर्जुआ वर्ग की ''मीडिल पाथ'' नीति के स्रोत और कारण की चर्चा की गई है।

इराक पर हमले और कब्जे का प्रभाव पूरे पश्चिम एशिया में पड़ेगा। विशेषकर इसका प्रभाव फिलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष पर पड़ेगा। वह अपने कठिन दौर

में प्रवेश कर गया है। इजरायल के लिये स्थिति पहले से अधिक अनुकूल हुयी है। इराक पर कब्जे के बाद फिलिस्तीन को लेकर ''शान्तिवार्ता'' का हल्ला तेज हुआ है। फिलिस्तीन के नेतृत्व को बदलने के लिए बाध्य कर दिया गया है और अब उनसे एक समझौता करवाया जा रहा है जो फिलिस्तीन की मेहनतकश जनता के खिलाफ है। फिलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष के विविध आयाम पर 'लाल सलाम' में पहले ही चर्चा की जा चुकी है, इसलिए यहां अलग से टिप्पणी नहीं की गयी है। प्रसंगवश ही कुछ स्थानों पर जिक्र भर किया गया है।

II
बीसवीं सदी और इराक

एक समय सभ्यता का केन्द्र रहा इराक पिछले एक से वर्ष विश्व राजनीति का केन्द्र बना हुआ है।

बीसवीं सदी में इतिहास को गति देने वाली दो मुख्य वेगवती धारायें रही हैं। इन दोनों धाराओं ने बीसवीं सदी में इतिहास की गति की दिशा को तय किया है।

पहली, समाजवाद की धारा जिसने बीसवीं सदी की गति की मुख्य दिशा को तय किया है। जब समाजवाद आगे बढ़ रहा था तब इतिहास ने मानव मुक्ति के बड़े-बड़े डग भरे, पूरी मानव जाति के मेहनतकशों को समाजवादी समाज तथा साम्यवादी विचारों ने एक नयी दुनिया का परिचय दिया तथा श्रेष्ठ मानव जीवन के दर्शन दिये लेकिन उसकी वक्ती पराजय के साथ ही इतिहास के पृष्ठों में प्रतिक्रियावाद की काली स्याही उड़ेले जाने लगी। समाजवाद साम्राज्यवाद और पूंजीवाद को सीधे सामने से चुनौती दे रहा था।

दूसरी, राष्ट्रीय मुक्ति की धारा है। इस धारा का समग्र नतीजा यह निकला कि साम्राज्यवाद की गिरफ्त से एक-एक करके उपनिवेश मुक्त होते चले गये। बीसवीं सदी जिस मुकाम से शुरू हुई और जिस मुकाम पर जाकर खत्म हुई, उसने पूरी दुनिया के नकशे को ही बदल डाला। साम्राज्यवाद को काफी पीछे हटना पड़ा है। औपनिवेशिक,नव-औपनिवेशिक चरणों से गुजरते हुए दुनिया आर्थिक नव-औपनिवेशिक चरण में प्रवेश कर गयी है। समाजवाद की वक्ती पराजय का असर साम्राज्यवाद और तीसरी दुनिया के रिश्तों पर भी पड़ा है। साम्राज्यवाद की आक्रामकता बढ़ी है।

बीसवीं सदी के समाप्त होते-होते राष्ट्रीय मुक्ति की धारा समाजवादी धारा में विलीन हो गयी, समाजवादी धारा में समाहित हो गयी है। राष्ट्रीय मुक्ति के सभी बचे-खुचे कार्यभार समाजवाद की स्थापना के कार्यभार के हिस्से हो गये है।

इतिहास की उपरोक्त आम दिशा के अनुरूप ही इराक का इतिहास रहा है। आज के इराक को समझने के लिए हम इसकी संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

सोलहवीं शताब्दी से लेकर प्रथम विश्वयुद्ध तक इराक आटोमन साम्राज्य का हिस्सा था। पहले विश्वयुद्ध (1914-1919) में तुर्की की पराजय के साथ ही आटोमन साम्राज्य बिखर गया। विश्वयुद्ध के बाद अस्तित्व में आये लीग आफ नेशन्स ने 'मेण्डेट व्यवस्था' के तहत यूरोप के दो प्रमुख विजयी साम्राज्यवादी देश ब्रिटेन और फ्रांस के बीच तुर्की के आधिपत्य वाले क्षेत्रों का बंटवारा कर दिया। इस मेण्डेट व्यवस्था के तहत फ्रांस और ब्रिटेन का इन क्षेत्रों में तब तक कब्जा रहना था जब तक कि इन क्षेत्रों के निवासी ये न साबित कर दें कि वे आजादी के लायक है। यह साबित करने के बाद ही उन्हें आजादी मिलनी थी तथा लीग आफ नेशन्स की सदस्यता भी प्राप्त होनी थी।

इस मेण्डेट व्यवरथा के जरिये ब्रिटेन को इराक, फिलिस्तीन व ट्रांस जार्डन (आज का जार्डन) और फ्रांस को लेबनान व सीरिया मिले।

इस तरह इराक ब्रिटेन का उपनिवेश बन गया। मोसुल, बगदाद, और बसरा क्षेत्रों को मिलाकर ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने इराक का निर्माण किया। मोसूल कुर्द बहुल,बगदाद सुन्नी व बसरा शिया बहुल इलाका है। इराक में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने फैसल को राजा घोषित कर अपनी कठपुतली सरकार की स्थापना कर दी। स्वशासन के नाम पर यह पाखण्ड लीग आफ नेशन्स की मेण्डेट व्यवस्था के तहत हो रहा था। इस राजा के पास नाममात्र के अधिकार भी नहीं थे। इराक ब्रिटेन का उपनिवेश बन गया था।

1920 से ही ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के खिलाफ इराक की जनता ने जुझारू संघर्ष शुरू कर दिये। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने जनता के विद्रोह को दबाने के लिये भयानक जुल्म ढहाने शुरू किये। गांवों के ऊपर हवाई जहाजों से बम तक फेंके गये। जनता को भ्रम में डालने के लिए ही फैसल को 1921 में इराक का राजा घोषित किया गया था।

बीसवीं शताब्दी के शुरू के दशकों में पूरे अरब व ईरान के इलाकों में तेल के स्रोतों का पता चला। तेल के सम्भावित क्षेत्रों की खोज व बँटवारे को लेकर साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच मारकाट शुरू हो गई। प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ने के पहले ही इराक में तेल की खोज को लेकर 1912 में तुर्की पैट्रोलियम कम्पनी (TPC) की स्थापना की गई जिसमें 50 फीसदी हिस्सा ब्रिटेन का, 25 फीसदी हिस्सा जर्मनी का तथा शेष 25 फीसदी हिस्सा डच (नीदरलैण्ड) का था। जर्मनी के युद्ध में पराजित होने के बाद यह हिस्सा फ्रांसिसी साम्राज्यवादियों ने हासिल कर लिया।

प्रथम विश्वयुद्ध के समाप्त होने के बाद अमेरिका एक ऐसी साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में था जो कि तेल में हिस्सेदारी चाहता था। 1928 में इराक के किरकुक इलाके में तेल का दोहन शुरू हुआ। अमेरिका के दवाब के चलते, तुर्की पेट्रोलियम कम्पनी का पुनः बंटवारा किया गया। 1928 में हुए बंटवारे के तहत ब्रिटेन, फ्रांस, नीदरलैण्ड व अमेरिका को 1929 में स्थापित इराकी पेट्रोलियम कम्पनी (TPC का बंटवारे के बाद का नया नाम) में प्रत्येक को 23.75 फीसदी हिस्सेदारी प्राप्त हुई। शेष 5 फीसदी हिस्सा तेल अरबपति गुलेबिकियां को प्राप्त हुआ।

इराक की जनता ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का निरन्तर विरोध करती रही। फैसल इराक का राजा बना रहा। 1925 में इराक संवैधानिक राजतंत्र बन गया। वास्तव में इस राजा के पास नाममात्र के अधिकार थे। 1932 में इराक को ''आजादी'' दे दी गई। इराक लीग आफ नेशन्स का स्वतंत्र राष्ट्र की हैसियत से सदस्य बन गया। ''घनिष्ठ सहयोग'' (Close alliance) नामक सन्धि के तहत ब्रिटेन का इराक की घरेलू और विदेश नीति में प्रभुत्व बना रहा। ब्रिटिश फौजी अड्डे इराक के विभिन्न स्थानों पर बने हुए थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय इराक के शासकों एक धड़े ने युद्ध की परिस्थिति और ब्रिटेन की युद्ध के शुरू के वर्षो में कमजोर स्थिति का फायदा उठाने की कोशिशें की। धुरी राष्ट्रों से सम्बन्ध बनाये, इसमें मुख्यतः इराक की फौज के अफसर शामिल थे। इन्होंने राजा का तख्ता पलटने की कोशिश की। 1941 में ब्रिटिश फौजों ने इराक को अपने नियंत्रण में ले लिया। फैसल को दुबारा से सत्ताशीन किया। जरनल नूरी को प्रधानमंत्री बनाया। ब्रिटिशपरस्त नूरी 1925 से 1958 के बीच 14 बार प्रधानमंत्री बना। इराक में इस सत्ता की अस्थिरता का एक अन्य प्रमाण यह है कि 1925-1958 के बीच 50 मंत्रीमण्डल गठित हुये तथा दस बार आम चुनाव हुये। पहले ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने फिर अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने क्रूरतापूर्वक जन-आन्दोलनों और जन-संघर्षों का दमन किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होते ही एशिया व अफ्रीका के तमाम देश औपनिवेशिक शासन से क्रमशः मुक्त होने लगे। यह दौर साम्राज्यवाद के पीछे हटने तथा समाजवाद तथा राष्ट्रीय मुक्तिधारा के आगे बढ़ने का था। सोवियत संघ सहित

तेरह देशों का शक्तिशाली समाजवादी खेमा अस्तित्व में आ चुका था। यह शक्तिशाली समाजवादी खेमा साम्राज्यवाद को चुनौती दे रहा था और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों को प्रेरणा व सहयोग दे रहा था।

यही वह समय था जब अरब राष्ट्रवाद पूरे उभार था। फिलिस्तीन अरब राष्ट्रवाद का एक प्रमुख प्रतीक बना हुआ था। 1956 में मिस्र ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर दिया। मिस्र के इस कदम का साम्राज्यवादियों ने घोर विरोध किया। फ्रांस और ब्रिटेन ने इजरायल के साथ मिस्र पर हमला बोल दिया। परन्तु मिस्र अपने फैसले से पीछे नहीं हटा। सोवियत संघ मिस्र के साथ खड़ा था। अमेरिकी साम्राज्यवादियों का भी मिस्र को समर्थन हासिल हुआ था।

1958 में सीरिया और मिस्र ने मिलकर संयुक्त अरब गणतंत्र स्थापित कर लिया जो 1961 तक चला।

ब्रिटिश और अमेरिकी साम्राज्यवादी अपने हितों की खातिर अरब देशों में प्रतिक्रियावादी ताकतों के साथ खड़े थे। तेल का राष्ट्रीयकरण उनके तथा उनकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के खिलाफ था। 1951 में मोसद्दक की राष्ट्रवादी सरकार ने ईरान में ब्रिटिश पेट्रोलियम का राष्ट्रीकरण कर डाला। 1953 में सी० आई० ए० ने षड़यंत्र कर मोसद्दक का तख्ता पलट करवा दिया। बाद में सी० आई० ए० का इस षड़यंत्र का मुख्य प्रभारी गल्फ आयल नामक कम्पनी का उपाध्यक्ष बना।

1955 में अमेरिका ने बगदाद पैक्ट किया। बगदाद पैक्ट के जरिये नाटो की तर्ज पर सेण्टो (Central Treaty Organization) की स्थापना की गई। जिसके सदस्य तुर्की, इराक, ईरान, पाकिस्तान और ब्रिटेन थे। अरब राष्ट्रवाद और समाजवाद के खिलाफ यह सैनिक संगठन था, जिसका काम साम्राज्यवाद के हित साधना था। मिस्र इसमें शामिल नहीं था।

जुलाई, 1958 में इराक में मिस्र की तर्ज पर ही 'फ्री आफीसर्स' नामक संगठन जो इराकी सेना में बना हुआ था ने इराक की सत्ता अपने कब्जे में ले ली। ''इराकी क्रान्ति'' की अगुवाई एक फौजी अफसर अब्द अल्-करीम कासिम कर रहा था। राजा फैसल और उसके प्रधानमंत्री जरनल नूरी की हत्या कर दी गई। कासिम को देशव्यापी समर्थन हासिल था। उसने राजतंत्र की समाप्ति तथा गणतंत्र की स्थापना की घोषणा कर दी। इस्लाम को राजकीय धर्म तथा इराक को अरब राष्ट्र का एक हिस्सा घोषित किया गया। कासिम ने इराक को सेण्टों से अलग कर दिया और सोवियत संघ से रिश्ते बनायें। कासिम ने इराकी पेट्रोलियम कम्पनी जो कि साम्राज्यवादी कम्पनी थी को 0.5 फीसदी क्षेत्र से ही तेल दोहन करने दिया। शेष 99.5 फीसदी को सरकारी क्षेत्र में रखा और इसके लिये उसने इराक नेशनल आयल कम्पनी की स्थापना की। तेल से सम्बन्धित सभी मामलों में इसी कम्पनी को अधिकृत कर दिया गया तथा विदेशी कम्पनियों को किसी भी किस्म की छूट पर कानूनन (पब्लिक लॉ 80 के द्वारा) प्रतिबन्ध लगा दिया गया। I P C ने तेल उत्पादन में कमी कर के कासिम के लिए मुसीबत खड़ी करना शुरू कर दिया। I P C से प्राप्त राजस्व पर कासिम की सरकार निर्भर थी।

1963-1968 तक का समय, ऐसा समय रहा है जब इराक में राजनैतिक अस्थिरता रही है। 1963 में कासिम का पतन हो गया। 1963 में बाथ पार्टी, कासिम के निकट सहयोगी रहे आरिफ के साथ सत्ता में आयी। लेकिन आरिफ ने शीघ्र ही सत्ता को सेना के सहयोग से अपने हाथ में केन्द्रित कर लिया। बाथ पार्टी के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। 1964 में आरिफ ने मिस्र के प्रभाव में तथा अरब राष्ट्रवाद नारे के साथ बैंकों तथा कई उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया।

'65 में आरिफ की हेलीकाप्टर दुर्घटना में मृत्यु के बाद इराक पर सेना का ही कब्जा रहा। सेना में कई धड़े थे। 1968 में बाथ पार्टी ने सेना के सहयोग से इराक की सत्ता पर कब्जा कर लिया। घोषित तौर पर सत्ता अल-बकर के हाथ में

थी लेकिन सद्दाम हुसैन की बाथ पार्टी तथा सरकार में स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी। 1963 व 1968 में बाथ पार्टी के सत्ता कब्जा करने में अमेरिकी साम्राज्यवादियों का उन्हें सहयोग रहा है। इराक के नये शासकों ने साम्राज्यवादी प्रतिद्वन्द्विता का फायदा उठाया। 1972 में इराक ने सोवियत संघ से 15 वर्ष की मैत्री सन्धि की ताकि उसको आर्थिक व सैनिक सहयोग मिलें। सद्दाम हुसैन 1979 में अल्-बकर के इस्तीफे के बाद इराक का राष्ट्रपति बन गया।

1972 में I P C का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। और यह प्रक्रिया 1975 तक चलती रही। देश में मौजूद, तेल से सम्बन्धित सभी छोटी कम्पनियों का भी 1975 में राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। विदेशी कम्पनियों को राष्ट्रीयकरण के एवज में मुआवजा दिया गया। यह मुआवजा 30 करोड डालर था।

तेल तथा अन्य उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया 1958 से ही जारी थी। इस प्रक्रिया के साथ कृषि में व्यापक सुधार किये गये। 1958 से पहले तक कृषि योग्य भूमि कुछ जमीन्दारों के हाथों में केन्द्रित थी, 1958 में एक निश्चित सीमा से ऊपर की कृषि योग्य भूमि किसानों में बाँट दी गयी। 1969 में किसानों को इस बात का अधिकार दिया गया कि वे जमीन के मालिकों को जमीन का मुआवजा न दें। 1958 से 1969 के बीच में आधी जमीन का ही बँटवारा हो पाया था। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अन्य सुधारों के साथ नहरों का विकास किया गया। इन सबका नतीजा यह निकला कि कृषि में आधुनिक पूंजीवादी किस्म से उत्पादन होने लगा। कृषि सम्बन्धों में परिवर्तन आ गया।

इराक का शहरीकरण तेजी से हुआ। हाल के उपलब्ध आँकड़ों में नजर दौड़ाई जाये तो पता लगता है कि सन् 2000 में इराक की लगभग 76 फीसदी आबादी शहरों में तथा लगभग 24 फीसदी ग्रामीण इलाकों में रह रही थी। शेष अरब के राष्ट्रों की तुलना में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के चलते इराक की आबादी का बड़ा हिस्सा साक्षर है। 1995 के एक आंकड़े के अनुसार 15 साल से ऊपर की आयु के 58 फीसदी लोग साक्षर हैं। इराक पूरे अरब में सबसे धर्मनिरपेक्ष राज्य रहा है। महिलायें सार्वजनिक जीवन में अन्य अरब देशों के मुकाबले अधिक सक्रिय रही हैं। पूंजीवादी कल्याणकारी राज्य होने के चलते अन्य अरब देशों के मुकाबले स्वास्थ्य सेंवायें ठीक रही हैं। इराक के पूंजीवादीकरण ने उसे वर्गीय ध्रुवीकरण तथा असमानता की ओर धकेल दिया।

1979 में, इराक के पड़ोसी मुल्क ईरान में ''इस्लामिक क्रान्ति'' हो गयी। अमेरिकी साम्राज्यवाद तथा अमेरिकी समर्थन प्राप्त शाह के खिलाफ यह 'क्रान्ति' थी। ईरान शिया बहुल देश है जबकि इराक में शिया और सुन्नी दोनों ही मतों को मानने वाले रहते हैं। सद्दाम हुसैन ने 1980 में, ईरान की कमजोर आंतरिक स्थिति को देखते हुए, ईरान पर हमला बोल दिया। उसके कई तेल क्षेत्रों को अपने कब्जे में ले लिया। इराक के इस कदम को अमेरिकी-साम्राज्यवाद ने खुला समर्थन दिया और उसे सैनिक-आर्थिक सहायता मुहैया करायी। यही वह समय है जब इराक के साथ अमेरिकी- साम्राज्यवादियों के सम्बन्धों में क्रमशः सुधार होता चला गया। इस युद्ध के दौरान अमेरिका ने तमाम जनसंहार के हथियार उपलब्ध कराये, जिनमें रासायनिक और जैविक हथियार भी शामिल थे। इराक ने इन हथियारों का इस्तेमाल ईरान के अलावा कुर्दो के खिलाफ किया। 1980 में ईरान से युद्ध के पहले ही इराक के अमेरिका के साथ कूटनीतिक-राजनयिक सम्बन्ध कायम हुए, जो 1967 से भंग थे। इन सम्बन्धों का नतीजा यह भी निकला कि संयुक्त राष्ट्र संघ में इराक के रासायनिक हथियारों के इस्तेमाल को लेकर जितने भी प्रस्ताव आये, उनको अमेरिका ने पास नहीं होने दिया। 1982 में अमेरिका ने इराक को उन राज्यों की सूची से अलग कर दिया जिनके ऊपर अमेरिकी साम्राज्यवादियों का आरोप था कि ये राज्य आतंकवाद का समर्थन करते हैं।

ईरान के साथ इराक का युद्ध 1988 तक चलता रहा। 1987 व 1988 में इराक के समर्थन में स्वयं अमेरिका ने ईरान के जहाजों और तेल संस्थानों पर आक्रमण किया था, ईरान के साथ औपचारिक तौर पर युद्ध 1990 में समाप्त हुआ। इस युद्ध ने दोनों ही देशों को कमजोर किया। भारी पैमाने में नागरिक और सैनिक मारे गये। इराक व ईरान दोनों ही ऋणग्रस्त हो गये। इन्फ्रास्ट्रक्चर का भारी नुकसान हुआ। कमजोर इराक व ईरान साम्राज्यवाद के लिए फायदेमंद थे।

2 अगस्त 1990 को इराक ने कुवैत पर हमला कर दिया। इराक ने कुवैत पर हमला इस आधार पर किया कि आटोमन साम्राज्य के समय कुवैत बसरा विलायत का हिस्सा था। मुख्य बात थी इराक कुवैत की तेल सम्पदा पर कब्जा और फारस की खाड़ी में सुगम रास्ता चाहता था।

हालांकि कुवैत 1942 में आजाद हो गया था। यह आजादी वैसी ही थी जैसी इराक ने 1932 में हासिल की थी।

अमेरिकी साम्राज्यवादी ऐसे ही सुनहरे मौके की तलाश में थे। पश्चिम एशिया के विशाल तेल भण्डारों पर उसकी वर्षों से निगाह थी। अपनी षड्यंत्रकारी योजनाओं के तहत अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने इराक को कुवैत पर हमला करने दिया। अमेरिकी साम्राज्यवाद के कुत्सित इरादों पर पहले अरब राष्ट्रवाद और प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्यवादी शक्तियों ने लगाम लगा रखी थी। लेकिन 1990 आते-आते सोवियत साम्राज्यवादी शक्ति का पतन होने लगा तथा सोवियत खेमा बिखरने लगा तथा अरब राष्ट्रवाद भी धीमे-धीमे अपनी मौत मरने लगा। इजरायल से ज्यादातर अरब राष्ट्रवाद के पुरोधाओं के सम्बन्ध सत्तर व अस्सी के दशक में सुधरने लगे थे। मिस्र व जार्डन अमेरिकी खेमे में शामिल हो गये थे।

अगस्त 1990 में, संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद के एक प्रस्ताव (प्रस्ताव नं० 661) में इराक से तुरन्त कुवैत खाली करने को कहा गया और साथ ही उस पर आर्थिक व अन्य प्रतिवन्ध लगा दिये गये। अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने नवम्बर 1990 में एक प्रस्ताव (प्रस्ताव न0 678) पास करवाया जिसके तहत कहा गया कि कुवैत से इराक के कब्जे को खत्म करने के लिए सभी 'आवश्यक साधनों' का इस्तेमाल किया जायेगा।

अमेरिकी साम्राज्यवादी ऐसे ही किसी मौके की तलाश में थे जिसमें उनकी सैनिक कार्यवाही को संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन हासिल हो जाता। प्रस्ताव 678 ने यह मौका उसे दे दिया। कुवैत के लिबरेशन के नाम पर अमेरिका और ब्रिटेन के नेतृत्व में उनकी सहयोगी सेनायें प० एशिया में घुस गयीं। जनवरी 1991 में इराक पर हवाई हमले शुरू किये गये तथा फरवरी 1991 में जमीनी हमले शुरू किये गये। अप्रैल में इराक ने संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

इसके बावजूद अमेरिका और ब्रिटेन ने इराक ने उत्तरी व दक्षिण के बड़े हिस्सों को 'नो फ्लाई जोन' घोषित कर दिया। यह एक सम्प्रभु राष्ट्र की सम्प्रभुता का खुला उल्लंघन था। 1991 से अमेरिका की सेनायें कुवैत, सऊदी अरब आदि देशों में जम गयीं। भारी पैमाने पर हथियारबन्द जहाज फारस की खाड़ी में तभी से मौजूद हैं।

इराक के सभी प्रमुख शहरों पर भारी बमबारी की गई, जिसके दृश्यों को सारी दुनिया ने टी. वी. की स्क्रीन पर देखा। इस बमबारी से इराक के इन्फ्रास्टकचर का भारी नुकसान हुआ। सड़क, रेल, बन्दरगाह, बांध आदि तबाह हो गये। इराक बदहाली की ओर बढ़ता गया।

इराक पर लगाये गये प्रतिबन्धों और इस युद्ध का नतीजा यह निकला कि हजारों की संख्या में सैनिक व नागरिक मारे गये। प्रतिबन्धों के कारण इराक में दवाओं तथा तमाम आवश्यक चीजों का अभाव हो गया। सामान्य एन्टी-बायोटिक

दवाओं और साफ पानी के लिए आवश्यक क्लोरीन के अभाव में मरने वालों की संख्या हजारों में है। अमेरिका ने क्लस्टर बमों से लेकर रेडियोएक्टिव पदार्थ यूरेनियम से युक्त गोला-बारूद का इस्तेमाल 1991 में, इराक में किया। यूरेनियम के कारण इराक में कैंसर से मरने वालों की संख्या यकायक बढ़ी है। कुवैत से पीछे हटने के बावजूद इराक पर बमबारी का सिलसिला 2003 तक जारी रहा। नवम्बर-दिसम्बर '98 में अमेरिका और ब्रिटेन ने बगैर संयुक्त राष्ट्र संघ की अनुमति के ''आपरेशन डेजर्ट फाक्स'' के नाम पर इराक के मध्य व दक्षिण हिस्सों में पुनः भारी बमबारी की।

1991 से लेकर 2003 तक इराक में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में हथियार निरीक्षकों ने इराक के जनसंहार के हथियारों की जांच की। इराक ने क्रमशः अपने तथाकथित जनसंहार के हथियारों को नष्ट कर डाला। तमाम दांवपेचों के बाद अन्ततः हथियार निरीक्षकों ने माना की इराक के पास ऐसे हथियार अब नहीं हैं।

सन् 2000 में जार्ज बुश जूनियर अमेरिका का एक विवादास्पद चुनाव में राष्ट्रपति बना। उसके चुनाव के पीछे अमेरिका की बहुराष्ट्रीय तेल कम्पनियां सक्रिय थी। ये बहुराष्ट्रीय इजारेदार कम्पनियां दुनिया में मौजूद तेल और गैस भण्डारों पर कब्जा चाहती थी। इसके लिए वे चाहती थीं कि अमेरिका आक्रमक नीति अपनाये। बुश ने ऐसा ही किया भी । मध्य व पश्चिम एशिया में दुनिया के ज्ञात तेल भण्डारों का 65 फीसदी हिस्सा है, अकेले इराक में दुनिया का 11 फीसदी तेल भण्डार है। इराक में सऊदी अरब के बाद दूसरा बड़ा तेल भण्डार है।

11 सितम्बर, 2001 को न्यूयार्क और पेण्टागन में हुये आतंकवादी हमलों ने पहले अमेरिका को हतप्रभ किया परन्तु शीघ्र ही उसने अपने साम्राज्यवादी मंसूबों के लिए इस मौके का इस्तेमाल किया। पहले अफगानिस्तान, फिर इराक पर हमला किया गया। अलकायदा और ओसामा बिन लादेन के नाम पर अफगानिस्तान पर हमला कर दिया गया। हजारों लोगों का कत्लेआम करने के बाद वहां पर अपनी कठपुतली सरकार स्थापित कर दी। अफगानिस्तान का कैस्पियन सागर के पास मौजूद तेल व गैस भण्डारों के वजह से महत्व बढ़ गया था तथा इसका सैनिक दृष्टि से भी भू-राजनैतिक महत्व, काफी अधिक है।

जार्ज बुश ने इराक-ईरान-उत्तरी कोरिया को 'शैतानी-ध्रुव' घोषित किया। जार्ज बुश ने अब इराक के ऊपर यह आरोप लगाये कि उसके पास व्यापक जनसंहार के हथियार हैं और उसके सम्बन्ध अलकायदा से हैं। परन्तु दोनों ही आरोपों के कोई भी ठोस प्रमाण न तो थे, न ही दिये गये। वास्तव में यह महत्वपूर्ण भी नहीं था, ये तो अपने साम्राज्यवादी मंसूबों को पूरा करने के लिए मात्र बहाना था। इराक पर कब्जे के बावजूद अभी तक जनसंहार के कोई हथियार नहीं मिले हैं। अब तो यह समय की ही बात है कि कब अमेरिका और ब्रिटेन किसी षड्यंत्र के तहत उन्हें वहां पैदा कर दे। 20 मार्च, 2003 को अमेरिका और ब्रिटेन की सेनाओं ने हवाई और जमीनी हमले शुरू कर दिये। पूरी दुनिया में इसका व्यापक विरोध हुआ। फ्रांस,जर्मनी,रूस और चीन के शासकों ने भी इसका विरोध किया। इस पक्ष की समीक्षा आगे के पृष्ठों में की गयी है।

शुरूआत के दो हफ्तों तक इराकी सेना और इराकी जनता बहादुरी- पूर्वक लड़ी। बसरा को ब्रिटीश सेनायें तभी अपने कब्जे में ले सकी जब बगदाद में सद्दाम की सत्ता का वास्तव में पतन हो गया। संसाधनविहीन इराक की जनता तो इराक की सेना के पतन के बावजूद अपने संघर्ष को, आज भी जारी रखे हुए है।

9 अप्रैल को अमेरिका की सेनाओं ने बगदाद पर कब्जा कर लिया। दो मई को जार्ज बुश ने फारस खाड़ी में खड़े एक एयर-क्राफट कैरियर से इराक पर विजय की घोषणा की। 22 मई को संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद ने अमेरिका व ब्रिटेन के उस प्रस्ताव को पास कर दिया जिसमें ब्रिटेन व अमेरिका को इराक पर अनिश्चित

काल तक शासन करने का अधिकार दिया गया था। इसी प्रस्ताव के तहत इराक पर पिछले 13 वर्षों से लगाये गये प्रतिबन्ध भी समाप्त कर दिये गये। इस तरह इराक पर अमेरिका व ब्रिटेन का कब्जा हो गया। इराक में पुनर्निर्माण व विकास के नाम पर मुख्यत:ठेके अमेरिकी व ब्रिटिश कम्पनियों को मिलेंगे। सद्दाम की तानाशाही, व्यापक जनसंहार के हथियार, कुर्दों का उत्पीड़न या इराक की आजादी आदि वे फिकरे हैं या थे, जिनका इस्तेमाल अमेरिकी व ब्रिटीश साम्राज्यवादी अपने कुत्सित इरादों के लिए कर रहे थे या कर रहे हैं।

सद्दाम का पतन बुर्जुआ राष्ट्रवाद की सीमाओं को भी खुलकर बता देता है। बाथ पार्टी पिछले तीस सालों से सत्ता में थी, यह बुर्जआ वर्ग की पार्टी थी। समाजवाद, अरब राष्ट्रवाद आदि नारों का इस्तेमाल अपने प्रतिक्रियावादी शासन को बनाये रखने के लिए कर रही थी। बाथ पार्टी ने अपने विरोधियों तथा प्रगतिशील शक्तियों का निर्ममतापूर्वक दमन किया। कुर्द और अन्य राष्ट्रीयताओं के दमन में कोई कसर नहीं छोड़ी।

एक समय का प्रगतिशील बुर्जआ राष्ट्रवाद, बाद के समय में प्रतिक्रियावादी हो चुका था। बुर्जुआ राष्ट्रवाद के साथ साम्राज्यवाद के विरोध में जनता वैसे खड़ी नहीं हो सकती जैसे बीसवीं सदी के शुरूआती दशकों में तीसरी दुनिया के बुर्जुआ के एक हिस्से के साथ खड़ी हो जाती थी। बुर्जुआ वर्ग का शासन तीसरी दुनिया में प्रतिक्रियावाद के तमाम कीर्तिमान स्थापित कर चुका है। सद्दाम का शासन भी ऐसा ही था। बीसवीं सदी में जब तीसरी दुनिया का बुर्जुआ सत्ता में नहीं आया था और वो साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्षशील था, तब जनता भी साम्राज्यवाद के खिलाफ उसके साथ आ जाती थी। परन्तु आज तीसरी दुनिया के शासकों और जनता के हित एकदम अलग-अलग हैं। बुर्जुआ राष्ट्रवाद और आदर्शवाद के नारे खोखले साबित हो चुके हैं। ऐसे में इराक की जनता सद्दाम के प्रतिक्रियावादी शासन के लिए भला क्यों लड़ती या लड़ेगी। जनता का अपना साम्राज्यवाद-विरोधी एजेण्डा है जिसके लिए इराक की जनता पहले से संघर्षरत् थी और आज भी संघर्षरत् है।

III
अमेरिकी साम्राज्यवाद का संकट

इराक-संकट ने अमेरिकी साम्राज्यवाद के संकट को भी उधाड़ के रख दिया है। पूरे एक वर्ष से जारी इस घटनाक्रम ने अमेरिका की सर्व -शक्तिमत्ता की पोल खोल कर रख दी है। सोवियत संघ के पतन के बाद पहली दफा दुनिया एकल ध्रुव से बहु ध्रुव की ओर बढ़ती हुयी दिखाई दे रही है।

ऐसा नही है कि जब 1991 में अमेरिका ने इराक पर हमला बोला था तब उसकी आलोचना नहीं हुई थी या दुनिया की जनता ने उसका विरोध नहीं किया था। लेकिन इस बार विरोध तीखा था। जनता की ओर से किया गया विरोध वियतनाम के दिनों की यादें ताजा कर रहा था।

इस बार अमेरिकी साम्राज्यवादियों को 1991 के इराक या 2001 के अफगानिस्तान पर किये हमले की तरह, साम्राज्यवादियों देशों की तरफ से खुला समर्थन नहीं मिला। यद्यपि फ्रांस और जर्मनी ने, 1991 में अमेरिका द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव नं० 678 की मनमानी- पूर्ण व्याख्या का विरोध किया था और यह कहा था कि इसका अर्थ यह नहीं है कि अमेरिका इराक पर हमला कर दे। लेकिन इस बार सुरक्षा परिषद के स्थायी और अस्थायी सदस्यों का विरोध इतना ज्यादा था कि अमेरिका लाख प्रयत्न और धमकियों के बावजूद,

वैसे प्रस्ताव पास नहीं कर सका। अमेरिका को बगैर संयुक्त राष्ट्र संघ की मोहर के इराक पर हमला करना पड़ा।

अमेरिकी साम्राज्यवाद के समक्ष इस बार संकट दो तरफा है। आन्तरिक रूप से अमेरिकी अर्थव्यवस्था गम्भीर दौर से गुजर रही है तथा वहीं दूसरी तरफ दुनिया में यूरोपीय यूनियन, फ्रांस और जर्मनी के नेतृत्व में उसको चुनौती दे रहा है। रूस भी नब्बे के दशक के संकट से उभर रहा है। वह अपनी खोई हैसियत को पाने के लिए व्यग्र है।

पहले, यहां पर हम अमेरिकी साम्राज्यवाद के आंतरिक संकट की चर्चा करेंगे। आंतरिक संकट में भी मुख्यतया अर्थव्यवस्था की।

अमेरिकी अर्थव्यवस्था ठहराव की शिकार है। यद्यपि पिछली सदी के अन्तिम दशक में उसकी अर्थव्यवस्था की विकास दर अन्य साम्राज्यवादियों के मुकाबले अधिक थी परन्तु पूरे दशक भर उसके सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि की दर अधिकतम 4.4 फीसदी के आंकड़े को ही छू पायी। अन्य साम्राज्यवादी देशों की सकल घरेलू उत्पाद की दर अधिकांश समय 3 फीसदी से नीचे रही और कई बार तो कई देशों की नकारात्मक भी रही।

नब्बे के दशक के ''अच्छे दिन'' जल्द ही बीत गये और 2001 से अमेरिकी अर्थव्यवस्था, फिर से मंदी की चपेट में है। सकल घरेलू उत्पाद की दर गिर रही है। विश्व पूंजीवादी व्यवस्था का नेता अमेरिका अपनी अर्थव्यवस्था को सारे आढ़े-तिरछे समीकरणों के बावजूद मंदी की चपेट से बाहर निकाल नही पा रहा हैं। पिछले वर्ष के अन्तिम तीन महीनों में सकल घरेलू उत्पाद की सालाना वृद्धि दर 1.4 फीसदी रही है। पूरे साल अर्थव्यवस्था 2.4 फीसदी की दर से ही बड़ी है।

पूरे नब्बे के दशक में सकल घरेलू उत्पाद की दर अन्य साम्राज्यवादी देशों के मुकाबले अधिक रहने के बावजूद अर्थव्यवस्था नये रोजगार पैदा नहीं कर सकी। एक रिर्पोट के अनुसार बेरोजगारी की दर जो सितम्बर, 2000 में 3.9 फीसदी थी, नवम्बर 2002 में बढ़कर 6 फीसदी हो गयी, 30 लाख रोजगार के अवसर खत्म हो गये जिनमें से अकेले मैन्यूफैक्चरिंग में 20 लाख अवसर खत्म हुए। इसी रिर्पोट के अनुसार एक साल पहले जहां ऐसे लोगों की संख्या दस लाख थी जिन्हें 26 हफ्ते या उससे अधिक समय से रोजगार नहीं मिला था वहीं अब ऐसे लोंगों की संख्या 17 लाख थी। एक अन्य तथ्य के अनुसार अकेले जार्ज बुश जूनियर के तीन साल के शासन के दौरान 20 लाख से अधिक लोगों की नौकरियां छिन गयीं।

अमेरिका की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मंदी, बेरोजगारी की समस्या के साथ-साथ अति उत्पादन का भी शिकार है। मंदी के कारण अमेरिका के तमाम उद्योगों ने अपनी उत्पादन क्षमता को घटाना शुरू किया हुआ है। आटोमोबाइल एअरलाइन्स,टेक्राटाइल,स्टील, मशीन टूल्स, सेमीकण्डकटर, टेलीकम्युनिकेशन्स आदि सभी क्षेत्रों में उत्पादन क्षमता से काफी नीचे उत्पादन किया जा रहा है। अमेरिका के फेडरल रिजर्व के अनुसार मैन्यूफैक्चरिंग अपनी क्षमता का केवल 73.5 फीसदी ही इस्तेमाल कर रही है। फोर्ड, जरनल मोटर्स जैसी प्रमुख आटो मोबाइल उद्योग अपने कारखाने बन्द कर रहे हैं और श्रमिकों की छंटनी कर रहे हैं। उत्पादन शक्तियों का विनाश पतनशील पूंजीवाद यानि साम्राज्यवाद की लाक्षणिक विशेषता है और इसको आज के अमेरिका में प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

अमेरिकी अर्थव्यवस्था की ऋणग्रस्तता की समस्या गहराती जा रही है। सभी क्षेत्रों (सरकारी, हाउसहोल्ड बिजनेस) को मिलाकर 1994 में ऋण 17204.3 अरब डालर था, वह सन् 2002 में बढ़कर 29968.4 अरब डालर हो गया था। इसी तरह अमेरिका का व्यापार घाटा भी बढ़ता जा रहा है और इस वक्त 460 अरब डालर तक पहुंच गया है। सालाना चालू खाता घाटा (Current account deficit- CAD) 500 अरब डालर तक पहुँच गया है। जो कि सकल घरेलू उत्पाद का 5 फीसदी है।

अमेरिका की मुद्रा की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बने हुए दबदबे के कारण अमेरिका के समक्ष मुद्रा-संकट उस रूप में नहीं खड़ा होता है, जैसे तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं के समक्ष खड़ा रहता है।

भ्रष्टाचार, अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, कारपोरेशनों का दैनिक आचरण बना हुआ है। शेयर मार्केट में ऊँचे स्थानों पर बने रहने के लिए कारपोरेशन अपने ही शेयरों को बैंको से नीची ब्याज दर का फायदा उठाकर, ऋण लेकर, खरीद रहे हैं। इस तरह से अपने स्रोतों को विकसित करके नयी जगहों पर निवेश कर रहे हैं। पिछले तीन वर्षों में ऐसे 27 बड़े कारपोरेशनों का मामला सामने आ चुका है। इन भ्रष्टाचार के मामलों में एनरान, वर्ल्डकाम, जीरोक्स, AOL टाइम वारनर,जैसे कारपोरेशन के अतिरिक्त अमेरिका के दो प्रमुख बैंक सीटि ग्रुप और जे० पी० मारगन तथा वित्तीय आडिट फर्म आर्थर एण्डरसन शामिल हैं।

अमेरिका की अर्थव्यवस्था का संकट सामाजिक संकट को बढ़ाता जा रहा है। अमेरिका में अमीरी-गरीबी का फर्क बढ़ता जा रहा है। आय में असमानता पहले से कई गुना बढ़ चुकी है। एक आंकड़े के अनुसार 1970 में एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO) की आय तथा सामान्य मजदूर की आय में जहाँ बीस गुने का फर्क था, वहां यह 1998 में बढ़कर 419 गुने का हो चुका है। दुनिया में सबसे अधिक व्यक्ति अमेरिका की जेलों में बन्द हैं। अमेरिका में नये-नये काले कानून आतंकवाद से लड़ने के नाम पर बनाये जा रहे हैं जो कि नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का भी हनन करते हैं। दि पेट्रीयट एक्ट (The Patriot Act), होम सिक्योरिटी एक्ट ऐसे ही कानून हैं।

अमेरिका का राष्ट्रपति देश के आंतरिक संकट को हल करने के लिए युद्ध का सहारा ले रहा है। पहले उसके 'शैतानी ध्रुव' में इराक-ईरान-उ० कोरिया शामिल थे। अब बुश सीरिया, लीबिया आदि देशों को इसमें शामिल कर रहा है और पूरी दुनिया से कह रहा है,''या तो आप हमारे साथ हैं या फिर आतंकवाद के साथ हैं''। जार्ज बुश आतंकवाद से लड़ने के नाम पर अमेरिकी-साम्राज्यवाद के हितों को साध रहा है। ब्रिटिश-साम्राज्यवाद अमेरिकी-साम्राज्यवाद का घनिष्ठ सहयोगी बना हुआ है। दुनिया में जार्ज बुश और टोनी ब्लेयर इजारेदार तेल घरानों और अन्य कम्पनियों के हितों को साध रहे हैं। आज मोटे तौर पर अमेरिकी व ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के आर्थिक-राजनैतिक-सैनिक हित एक है। अफगानिस्तान, इराक सहित सभी स्थानों पर ब्रिटिश-साम्राज्यवादी अमेरिकी-साम्राज्यवादियों के साथ रहे हैं।

अमेरिकी साम्राज्यवाद की इक्कीसवीं सदी की योजना

दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद सन् 1947 में अमेरिका के राष्ट्रपति हैरी ट्रूमेन ने कहा, *''अमेरिकी व्यवस्था केवल तभी अमेरिका में भी कायम रह सकती है जबकि वह एक विश्वव्यापी व्यवस्था बन जाये''।* अमेरिका के राष्ट्रपति के इस बयान में अमेरिकी-साम्राज्यवाद की तब की रणनीति दिखायी देती है। यह बयान अमेरिकी साम्राज्यवाद की पूरी दुनिया में अपना प्रभुत्व कायम करने की मंशा को दर्शाता है। लेकिन अमेरिका की इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति कि वह एक विश्वव्यापी व्यवस्था बन जाये, पूरी बीसवीं सदी में पूरी नहीं हो सकी। समाजवाद, राष्ट्रीय मुक्ति की लहर, साम्राज्यवाद के संकट, साम्राज्यवादियों के आपसी अन्तरविरोधों तथा जनता के जुझारू संघर्षो के कारण अमेरिकी-साम्राज्यवाद की पूरे विश्व पर प्रभुत्व की इच्छा अपना आकार ग्रहण नहीं कर सकी।

अब पुनः अमेरिका की व्यवस्था को विश्वव्यापी व्यवस्था बनाने की योजना अमेरिकी-साम्राज्यवाद बना रहा है। अमेरिकी-साम्राज्यवाद की इस परियोजना को ''नयी अमेरिकी सदी के लिए परियोजना'' (PNAC-Project for the New American Century), नाम दिया गया है। अमेरिका में बुश के सत्ता में आने के पहले, आज के अमेरिका के बुश मंत्री-मण्डल के कई प्रमुख मंत्री इस परियोजना के निर्माता थे।

इस परियोजना के अनुसार जो किया जाना हैः- उसमें इराक पर किसी भी तरह से कब्जा। इराक, सऊदी अरब व कुवैत में अमेरिकी सेना के स्थायी अड्डे ताकि पूरे अरब में अमेरिकी-साम्राज्यवाद के हितों को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखा जा सके। इसके लिए आवश्यक धन राशि जुटाना। नये हथियार विकसित करना, जिनमें ऐसे छोटे नाभिकीय हथियार शामिल हैं, जिनका रणनीतिक महत्व हो तथा आक्रमण के नये तरीके विकसित करना। अंतरिक्ष सेना की स्थापना करना और रीगन के जमाने के स्टार वार प्रोग्राम को पुनर्जीवित करना। दक्षिण पूर्व एशिया में अमेरिका के सैनिक अड्डे कायम करना। चीन का 'लोकतांत्रिककरण' कर ऐसी सरकार कायम करना जो अमेरिकापरस्त हो। उत्तरी कोरिया, लीबिया, सीरिया, और ईरान में सत्ता परिवर्तन करना तथा अपने सैनिक अड्डे कायम करना। यूरोप, एशिया,लैटिन अमेरिका की सभी ताकतों को अमेरिका के प्रभाव में लाना और संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका के स्थान पर अमेरिका की भूमिका को स्थापित करना।

अमेरिकी साम्राज्यवाद के PNAC की योजना को दुनिया में बदलते नये समीकरणों से धक्का लगा है। ऐसी योजनायें अमेरिका के पराभव को नही रोक सकती हैं। अमेरिकी अर्थव्यवस्था के संकट की चर्चा हम कर चुके हैं। साम्राज्यवादी देशों के आपसी अन्तरविरोध, इराक संकट के समय खुलकर सामने आये हैं। इसने अमेरिका की PNAC नामक परियोजना के सतहीपन को साबित किया है। एक अन्य चीज जिसे अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने इराक पर हमले की योजना बनाते वक्त अपनी गणना में नहीं लिया था, वो चीज है, जनता का अमेरिकी-साम्राज्यवाद के विरोध में पूरे विश्व में उठ खड़ा होना। अमेरिकी साम्राज्यवाद ने यही गलती अपनी नयी सदी की परियोजना बनाने में की है।

IV

साम्राज्यवादियों के तीखे होते आपसी अन्तरविरोध

बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में आये परिवर्तनों ने साम्राज्यवाद के आपसी समीकरणों में भारी बदलाव ला दिया है। '60 के दशक में सोवियत संघ एक समाजवादी मुल्क से सामाजिक-साम्राज्यवादी मुल्क में तबदील हो गया था। अमेरिका और सोवियत संघ के बीच लम्बे समय तक चली होड़ ने दोनों ही साम्राज्यवादियों को गहरे आर्थिक संकट में धकेल दिया। सोवियत संघ के पतन के बाद, अमेरिका विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था का नेता बनकर उभरा।

नब्बे के दशक में अमेरिका एक मात्र ऐसी साम्राज्यवादी शक्ति था जो आर्थिक-सैनिक, हर दृष्टि से, बाकि साम्राज्यवादी देशों से काफी आगे था। उसका

मुख्य प्रतिद्वन्द्वी सोवियत संघ बिखर चुका था। और रूस अपने को समेटने की कोशिश कर रहा था।

नब्बे के दशक में अमेरिकी साम्राज्यवाद के लिए भावी चुनौती के रूप में यूरोपीय यूनियन उभरने लगा। फ्रांस और जर्मनी, यूरोपीय यूनियन के नेता बनकर उभरे हैं। आज यूरोपीय यूनियन की सदस्य संख्या 25 पहुँच गयी है। अप्रैल माह में, 10 नये देश - इस्तोनिया, साईप्रस, लातविया,लिथुवानिया,माल्टा,हंगरी, पोलैण्ड, स्लोवाकिया, स्लोवानिया और चेक गणराज्य यूरोपीय यूनियन में शामिल हुए हैं। एक अर्थव्यवस्था के रूप में यह अमेरिकी अर्थव्यवस्था के बराबर बनाती हैं।

1991 में इराक पर आक्रमण करने तथा 2002 में अफगानिस्तान पर हमले के दौरान अधिकांश साम्राज्यवादी देश, अमेरिका के पीछे लामबन्द थे तथा अमेरिका के नेतृत्व की स्वीकार्यता पूरे नब्बे के दशक में कमोबेश बनी रही। लेकिन जैसे-जैसे यूरोपीय यूनियन आकार ग्रहण करता गया है तथा यूरोपीय यूनियन में शामिल देश एक साझी मुद्रा के रूप में, यूरो को अपनाने लगे तो अमेरिका के सामने एक चुनौती खड़ी होने लगी है।

पिछले कुछ वर्षो में रूस भी अपनी अर्थव्यवस्था व सैनिक ताकत को पुनर्संगठित करने में लगा हुआ है। उसके हथियार उद्योग ने दुबारा से दुनिया में अपनी जगह बनाना शुरू कर दिया है। इसी तरह से, रूस की उभरती हुई तेल कम्पनी लुक आयल तथा अन्य कम्पनियां अपना प्रभाव तेल व्यापार में रख रहीं हैं। रूस नहीं चाहता था कि अमेरिका व ब्रिटेन इराक पर आक्रमण कर, उस पर कब्जा करें, इससे उसका सीधा नुकसान हो रहा था। उसकी तेल कम्पनियों को इराक में 7.5 से लेकर 15 अरब बैरल तेल निकालने का अवसर वैसे ही मिलता, जैसे ही संयुक्त राष्ट्र संघ इराक पर लगाये गये प्रतिबन्धों को हटाता। रूस पिछले कुछ वर्षो से लगातार अपनी खोई हैसियत के लिए प्रयत्नशील है। चीन से उसके करीबी रिश्ते बने हैं और दोनों देशों ने मिलकर 'शंघाई ग्रुप' का निर्माण किया है।

अमेरिकी-साम्राज्यवाद की इराक से सम्बन्धित नीतियों और उसके इराक पर आक्रमण का विरोध, यूरोप के साम्राज्यवादियों के अलावा कनाडा ने भी किया। कनाडा साम्राज्यवादियों के क्लब G-8 का सदस्य है। अधिकांश मामलों में, दशकों से कनाडा अमेरिकी-साम्राज्यवादियों के साथ खड़ा रहा है। उसके आर्थिक-सैनिक हित अमेरिका के साथ जुड़े रहे हैं और आज भी जुड़े हुए हैं। अमेरिका और कनाडा के बीच रोज 1.3 अरब डालर का व्यापार होता है और कनाडा का 35 फीसदी व्यापार अमेरिका के साथ होता है। कनाडा नाफ्टा का सदस्य भी है। परन्तु कनाडा का इस युद्ध में अमेरिका के साथ न खड़ा होना, कनाडा की ताकत को कम अमेरिका की कमजोरी को अधिक दिखाता है। 1991 में इराक पर हमले के दौरान कनाडा ने अमेरिका का भरपूर साथ दिया था लेकिन इस बार उसने, अमेरिका की इराक में फौजी मदद सीधे तौर पर नहीं की है। अमेरिका ने यूरोपीय यूनियन के सदस्य देशों फ्रांस और जर्मनी को जैसे युद्ध पूर्व धमकी दी थी वैसे ही धमकी उसने कनाडा को भी दी थी। कनाडा के अमेरिका विरोध के पीछे एक कारण तेल का भी था। कनाडा अमेरिका की तेल जरूरतों के 15.5 फीसदी हिस्से को पूरा करता है। इराक के तेल पर अमेरिका के कब्जे का सीधा असर, कनाडा के निर्यात पर पड़ना था। कनाडा की अर्थव्यवस्था का संकट इससे गहराना था।

यूरोपीय यूनियन के देशों में अमेरिका का साथ देने को लेकर स्पष्ट विभाजन हो गया। ब्रिटेन जो यूरोपीय यूनियन का अनिच्छुक सदस्य है और उसके रिश्ते यूरोपीय यूनियन के मुकाबले अमेरिका के साथ अधिक गहरे हैं। उसने अपनी मुद्रा को अलग बनाकर रखा हुआ है तथा यूरो के बजाय उसकी मुद्रा पौण्ड डालर के साथ निकट सम्बन्ध बनाकर रखी हुई है। पौण्ड की डालर पर बनी हुई निर्भरता उसके अमेरिकी-साम्राज्यवाद के साथ खड़े होने का एक कारण बनता है। डालर की

तरह पौण्ड भी यूरो की उभरती हुई ताकत से चिन्तित है। तेल निर्यातक देशों के अपने तेल व्यापार की मुद्रा डालर के स्थान पर यूरो करने का सीधा प्रभाव अमेरिका के अलावा ब्रिटेन पर भी पड़ना है। यूरोपीय यूनियन के देशों में ब्रिटेन के अलावा स्पेन और इटली भी अमेरिका के साथ, इराक पर आक्रमण के समय खड़े थे। स्पेन ने यद्यपि सीधे फौजी तौर पर अमेरिका की साझा सेनाओं में भागीदारी नहीं की। फ्रांस,जर्मनी,बेल्जियम,लक्जमबर्ग आदि देश जिन्हें इस पूरे संकट के दौरान अमेरिका 'ओल्ड यूरोप' कहकर आलोचना कर रहा था, अमेरिका और ब्रिटेन की एकतरफा कार्यवाही के विरोधी थे।

अमेरिकी-साम्राज्यवादियों के साथ 'ओल्ड यूरोप' के देश अपने सम्बन्धों को बहुत ही नपे-तुले ढंग से बढ़ा रहे हैं। जैसे ही, अमेरिका और ब्रिटेन ने 20 मार्च, को बगैर सुरक्षा परिषद को विश्वास में लिये इराक पर आक्रमण कर दिया तो फ्रांस, जर्मनी और रूस ने भी नयी परिस्थितियों को तुरन्त स्वीकार कर लिया। सुरक्षा परिषद में वीटो का अधिकार रखने वाले पांच देशों में से तीन इस युद्ध के खिलाफ थे परन्तु किसी ने भी सुरक्षा परिषद की आपात बैठक नहीं बुलायी। फ्रांस, रूस और चीन तीनों ही स्थायी सदस्यों ने तटस्थता का रुख अपना लिया। अप्रैल का दूसरा सप्ताह आते-आते जब यह स्पष्ट होने लगा कि अमेरिका और ब्रिटेन इराक पर कब्जा कर लेंगे तो जर्मनी और फ्रांस के विदेशी मंत्रियों ने अमेरिका के समर्थन में बयान देने शुरू कर दिये।

नाटो के ''यूरोपीयन स्तम्भ'' को मजबूत करने के नाम पर यूरोपीयन यूनियन के चार सदस्यों फ्रांस,जर्मनी, बेल्जियम और लक्जमबर्ग ने अप्रैल माह के अन्त में यूरोपीयन आर्मी गठित करने का फैसला ले लिया। 2004 तक बुसेल्स में इस आर्मी का हेडक्वाटर स्थापित कर लिया जायेगा। ''ओल्ड यूरोप'' के इस कदम की अमेरिका और ब्रिटेन ने तुरन्त आलोचना की और इसे फूट डालने वाला कदम कहा, जबकि फ्रांस ने कहा कि वो अमेरिका के साथ बराबरी के रिश्ते चाहता है और एक ध्रुवीय दुनिया के बजाय बहु ध्रुवीय दुनिया का पक्षधर है। यह घटना साम्राज्यवादियों के बीच तीखे होते हुए अन्तरविरोध की ही एक अभिव्यक्ति है।

जापानी अर्थव्यवस्था अमेरिका के बाद दूसरे नम्बर की बड़ी अर्थव्यवस्था है। जापान अपने तेल आयात के लिए पूरे तरीके से परनिर्भर है और मध्य व पश्चिम एशिया के देशों पर सीधा प्रभाव डालने की स्थिति में नहीं है। जापानी-साम्राज्यवादी अमेरिकी-साम्राज्यवादियों के साथ इराक पर कब्जे को लेकर पूरी तरह से साथ खड़े रहे हैं। जापानी और अमेरिकी साम्राज्यवादियों के बीच विशेष सम्बन्ध बने हुए हैं। दोनों की अर्थव्यवस्थाएं घनिष्ठता से जुड़ी हुई हैं। जापान का सबसे अधिक निर्यात (कुल निर्यात का 27.8%) व सबसे अधिक आयात (कुल आयात का 22.3%) अमेरिका के साथ है तथा व्यापार सन्तुलन जापान के पक्ष में है। साथ ही अमेरिका के बाह्य ऋण का सबसे बड़ा स्रोत जापान है। जापानी सैनिक क्षमता को हासिल करने के लिए छटपटा रहे हैं। अप्रैल माह में जापान ने सैनिक जासूसी उपग्रह अंतरिक्ष में स्थापित करके, अपने इरादे जाहिर कर दिये हैं। वैसे भी जापानी थोड़े से ही समयान्तराल में एक बड़ी सेना विकसित करने की क्षमता रखते हैं।

इराक के सवाल पर साम्राज्यवादियों के आपसी अन्तरविरोध खुलकर सामने आ गये थे परन्तु इराक पर अमेरिकी और ब्रिटिश सेनाओं के कब्जे के बाद स्थिति में तेजी से परिवर्तन होने लगा तथा उनके बीच सुलह और समझौते का रुख दिखाई देने लगा है।

फ्रांस, जर्मनी और रूस के नेतृत्व में अन्य साम्राज्यवादी देश जहां संयुक्त राष्ट्र संघ के तहत ही कार्यवाही पर जोर दे रहे थे और किसी तरह के सैनिक हस्तक्षेप के खिलाफ थे। सद्दाम हुसैन के सत्ताच्युत होने के बाद उन्हें अपने तेल सौदों तथा अन्य आर्थिक लाभों के खत्म हो जाने की चिन्ता अलग से थी। वहीं

अमेरिका और ब्रिटेन किसी भी कीमत पर इराक पर कब्जा चाहते थे। उन्हें इराक में सद्दाम हुसैन के बने रहने से नुकसान हो रहा था। इराक की तेल सम्पदा पर उनका कोई भी हिस्सा नहीं था। सद्दाम हुसैन का रुख अमेरिका विरोधी बना हुआ था और वो अमेरिकी-साम्राज्यवाद, यूरोपीय-साम्राज्यवाद तथा रुसी-साम्राज्यवाद के अन्तरविराधों से लाभ उठाने की कोशिश कर रहा था। अमेरिकी-ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ स्पेन, इटली, जापान, पुर्तगाल, आस्ट्रेलिया आदि साम्राज्यवादी थे।

22 मई को संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में अमेरिका और ब्रिटेन द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव के पारित होने के साथ साम्राज्यवादियों के बीच इराक की स्थिति को लेकर सुलह-समझौता हो गया। फ्रांस, जर्मनी, रुस व अन्य साम्राज्यवादियों ने अमेरिका की श्रेष्ठता वक्ती तौर पर स्वीकार कर ली। इराक के मामले में वे पीछे हट गये। फ्रांस,जर्मनी व रुस अमेरिका के साथ तनाव को उस स्थिति तक नहीं बढ़ाना चाहते थे कि वो बड़े संकट को जन्म दे और उन्हें अपनी कमजोर स्थिति के कारण नुकसान उठाने पड़े और दूसरी तरफ वे अपने हितों की आसानी से बलि देने को भी तैयार नहीं थे। यही उनके व्यवहार को तय करने वाला अन्तरविरोध था। फिलहाल यह अन्तरविरोध अमेरिका के पक्ष में हल हो गया है।

इराक के सन्दर्भ में अमेरिकी-साम्राज्यवाद की योजनाओं को जिस तरह से धक्का लगा तथा उसमें विलम्ब होता गया और अन्त में बगैर संयुक्त राष्ट्र संघ की मोहर के जिस तरह से अमेरिका को इराक पर आक्रमण करना पड़ा, यह इस बात को दिखलाता है कि अमेरिका की नब्बे और उससे पहले के दशकों की सर्वोच्चता पर प्रश्न लग चुका है। नब्बे के दशक का एकल ध्रुवीय विश्व बहु ध्रुवीय विश्व की ओर बढ़ रहा है।

पूरे इराक संकट के दौरान संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका और प्रांसगकिता पर सवाल उठते रहे। तमाम किस्म के लोग इस सवाल को बड़ी संजीदगी से उठा रहे थे कि संयुकत राष्ट्र संघ का हश्र लीग आफ नेशन्स की तरह न हो जाये और एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के पतन के बाद दुनिया में अराजकता या अफरा-तफरी न फैल जाये और दुनिया चालीस के दशक में न पहुँच जाये। यह सरासर भोलापन, साम्राज्यवाद के चरित्र तथा ऐसी संस्थाओं के जन्म और विघटन को न समझने का नतीजा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विजयी शक्तियों के बीच सन्तुलन और दुनिया को महाशक्तियों के अनुसार चलाने के लिए आम सहमति के एक मंच के रूप में हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दुनिया में दो बड़ी महाशक्ति और उनके नेतृत्व में दो खेमे थे। पहली, महाशक्ति अमेरिकी साम्राज्यवाद और उसका खेमा था। तथा दूसरी, महाशक्ति सोवियत संघ और समाजवादी खेमा था। दूसरे विश्वयुद्ध में परास्त हुयी साम्राज्यवादी शक्तियों को सुरक्षा परिषद में शामिल नहीं किया गया था।

सोवियत संघ के सामाजिक साम्राज्यवादी हो जाने के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ दोनों महाशक्तियों के शक्ति सन्तुलन का परीक्षण स्थल बन कर रह गया था। सोवियत संघ के पतन होने तक, पूरे शीत युद्ध के दौरान कमोबेश यह स्थिति बनी रही। अपने-अपने हितों को साधने के लिए, दोनों ही, समय-समय पर संयुक्त राष्ट्र संघ की अनदेखी करते रहे हैं। और दोनों विरोधी एक-दूसरे के खिलाफ इसके मंच पर प्रस्ताव लाते रहें है। वीटो के अधिकार का प्रयोग शीत युद्ध के दौरान आम था।

नब्बे के दशक में संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिकी-साम्राज्यवाद के हितों को साधने का वैद्यानिक जरिया बन गया। इराक, यूगोस्लाविया, सोमालिया, इजरायल-फिलिस्तीन,अफगानिस्तान और पुनः 2002-2003 में इराक में अमेरिका के हितो को साधने का ही यंत्र था। अमेरिका के इस मंच को मनमुताबिक इस्तेमाल करने पर रोक ही तभी लगी या विलम्ब हुआ जब फ्रांस-रुस उसके वर्चस्व के लिए

चुनौती बनने की स्थिति में आये। अमेरिका के 20 मार्च को इसे धता बताकर इराक पर आक्रमण करने तथा 22 मई को अपनी हरकत को वैधानिक जामा पहनाने या वैधता दिलवाने के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ पुनः अन्तरराष्ट्रीय संस्था के बतौर ''स्थापित'' हो गया है।

तेल को लेकर मचती होड़ और इराक

दुनिया में अभी तक ज्ञात कच्चे तेल और प्राकृतिक गैस भण्डार क्रमशः इस प्रकार हैः अमेरिका व कनाडा में-3%, मैक्सिको, मध्य व दक्षिण अमेरिका में-9%, पश्चिमी यूरोप में-2%] अफ्रीका महाद्वीप में-9%, पूर्वी यूरोप व पूर्व सोवियत संघ में-7%, पूर्व एशिया व ओसनिया में-6%, पश्चिमी एशिया में-65%। इन आंकड़ों से साफ है कि दुनिया में सबसे बड़े तेल व गैस भण्डार पश्चिमी एशिया के देशों में है। दुनिया की प्रमुख साम्राज्यवादी शक्तियों के पास तेल की खपत के विशाल बाजार हैं लेकिन उनके पास तेल के बड़े भण्डार नहीं हैं।

दुनिया की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति अमेरिका के पास दुनिया के ज्ञात तेल भण्डार का मात्र दो प्रतिशत है। परन्तु वह दुनिया के सालाना तेल उत्पादन के 25 फीसदी का इस्तेमाल करता है। अमेरिका अपनी तेल की जरूरतों के लिए दुनिया के अन्य देशों पर निर्भर है। अमेरिका अपने तेल की जरूरत दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों से इस प्रकार पूरी करता हैः पश्चिमी एशिया से-24.1%, मध्य व दक्षिण अमेरिका से-22.3%, कनाडा से-15.5% , मेक्सिको से-12.4% और अफ्रीका से-14.4%। साफ है कि अमेरिका को भारी मात्रा में तेल आयात करना पड़ता है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और दुनिया में तेल भण्डारों व तेल बाजार को अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रभुत्व में लाने के लिए किसी देश पर आक्रमण की हद तक जाने को अमेरिकी-साम्राज्यवाद तैयार रहता है। अमेरिकी-साम्राज्यवाद अपने प्रभुत्व को तभी बना व बनाये रख सकता है जबकि वो तेल के स्रोतों व बाजार को अपने नियंत्रण में रख सके। तेल एक महत्वपूर्ण माल है यह अमेरिकी-साम्राज्यवाद जानता है।

अमेरिकी साम्राज्यवाद की तेल के स्रोतों व भण्डारों पर प्रभुत्व के ऊपर लगाम लगाने में बीसवीं सदी में राष्ट्रवाद और विशेषकर अरब राष्ट्रवाद की बड़ी भूमिका रही है। साठ के दशक में तेल निर्यातक देशों का संगठन ओपेक (OPEC) अस्तित्व में आ गया था। ओपेक के निर्माण में मुख्य भूमिका ईरान, इराक, सऊदी अरब, कुवैत और वेनेजुएला की थी। 1961 में जन्में ओपेक की सदस्यता बाद में बढ़ती चली गई। कतर, इण्डोनेशिया, अल्जीरिया, नाइजीरिया, लीबिया, संयुक्त अरब अमीरात आदि देश इस कार्टेल में शामिल होते चले गये।

ओपेक अपने सदस्यों के तेल उत्पादन तथा दुनिया में तेल कीमतों को नियंत्रित करने का काम करता है। पिछली सदी में ओपेक ने समय-समय पर तेल की कीमतों और उत्पादन को बढ़ा-घटा कर, साम्राज्यवादियों के लिए परेशानी खड़ा करता रहा है। यह साम्राज्यवाद के मूलतः खिलाफ रहा है। सत्तर के दशक से अमेरिकी-साम्राज्यवाद का पराभव शुरू हो गया था। डालर की पुरानी हैसियत कम होने लगी। समाजवाद की पराजय तथा राष्ट्रवाद की लहर के थमने ने, अमेरिकी साम्राज्यवाद को आक्रमक भूमिका का मौका उपलब्ध करा दिया। बीसवीं सदी के अन्तिम दशकों में अमेरिकी-साम्राज्यवाद के तीसरी दुनिया में दखलन्दाजी के पीछे के प्रमुख कारणों में से, एक कारण तेल रहा है। इस्राइल-अरब, इराक-ईरान, इराक-कुवैत, आदि में पिछली सदी में किये गये हस्तक्षेप के पीछे एक बड़ा कारण यह रहा है।

जैसे पहले बताया जा चुका है कि इराक के पास दुनिया का दूसरा बड़ा तेल भण्डार है। इस तेल भण्डार को अपने कब्जे में लेने के लिए तमाम साम्राज्यवादी शक्तियों और उनकी बहुराष्ट्रीय तेल कम्पनियों में तीखा संघर्ष रहा है। 1972 में इराक द्वारा तेल कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण करने का नुकसान सभी साम्राज्यवादियों को उठाना पड़ा है। इराक को अपने प्रभाव में लेने के लिए साम्राज्यवादी आपस में संघर्षरत रहे हैं। जब तक सोवियत संघ के नेतृत्व में दूसरा साम्राज्यवादी खेमा मौजूद था, इराक दोनों खेमों के बीच मौजूद अन्तरविरोध का फायदा उठाता रहा है। '90 में सोवियत संघ के पतन के बाद ही मुश्किलें बढ़ी। लेकिन फ्रांस और जर्मनी के नेतृत्व में यूरोपीय यूनियन के अस्तित्व में आने से इराक के विकल्प खुले। अमेरिका के नेतृत्व वाला साम्राज्यवादी खेमा, अब सोवियत संघ के दिनों जितना एकजुट नहीं रहा। अमेरिकी खेमे में अन्तरविरोध पहले से मौजूद थे। सोवियत संघ के विघटन के बाद अन्तरविरोध सामने आने लगे। फ्रांस व जर्मनी के हित अमेरिका व ब्रिटेन से टकराने लगे। इराक ने इस साम्राज्यवादी अन्तरविरोध का लाभ उठाने की कोशिश की और अमेरिका-ब्रिटेन के अतिरिक्त अन्य साम्राज्यवादी देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से 1991 के बाद समझौते किये । ये समझौते इराक पर संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिबन्ध हटते ही लागू होने थे।

इन साम्राज्यवादी देशों में फ्रांस की Total/ Fina Elf को 9-20 अरब बैरल ,रूस की Lukoil व Zarubenzneft आदि को 7.5-15 अरब बैरल तथा इटली की ENI/Agip को 2 अरब बैरल के तेल भण्डार के क्षेत्र दोहन के लिए दिये जाने थे। इराक पर अमेरिका के कब्जे के साथ ही ये सौदे अमेरिका व ब्रिटेन द्वारा रद्द किये जाने थे। फ्रांस, रूस, और चीन (इसकी चाइना नेशनल पेट्रोलियम को भी दो अरब बैरल का क्षेत्र दोहन के लिए मिलना था) के अमेरिका व ब्रिटेन के विरोध का यह एक ठोस कारण था।

इराक में तेल भण्डारों के और मिलने की सम्भावना है। अमेरिका के ऊर्जा विभाग का आकलन है कि इराक में 110 अरब बैरल के स्थान पर 220 अरब बैरल के तेल भण्डार हैं। अमेरिका और ब्रिटेन के साम्राज्यवादियों के इराक पर कब्जे के साथ ही यह विशाल तेल भण्डार अमेरिका और ब्रिटेन की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों Exxon Mobil, Chevron-Texaco, Amerada Hess,Shell आदि के हाथ में आ जायेंगे । इन अमेरिकी व ब्रिटिश इजारेदार बहुराष्ट्रीय तेल कम्पनियों की इजारेदारी तेल भण्डारों पर बढ़ेगी तथा फ्रांसिसी व रूसी इजारेदार बहुराष्ट्रीय तेल कम्पनियों का नुकसान होगा। दुनिया में तेल को लेकर और तेजी से होड़ मचेगी।

लैटिन अमेरिका, अफ्रीका, एशिया के तेल भण्डारों को लेकर यह होड़ तेज होती जा रही है। भविष्य में इराक जैसी स्थिति इन महाद्वीपों के देशों में भी पैदा हो सकती है। वेनेजुएला में अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने हूगो चावेज जो अमेरिका और उसकी तेल कम्पनियों के खिलाफ खड़ा है को सत्ताच्युत करने का प्रयास किया परन्तु वे इसमें विफल रहे। हूगो चावेज ने गम्भीर संकटों का सामना करते हुये अपनी पकड़ सत्ता में बनाये रखी है तथा कई सुधारवादी कदम उठाकर वेनेजुएला की जनता में लोकप्रियता व सर्मथन हासिल किया है।

डालर की सर्वशक्तिमतता को मिलती चुनौती

अमेरिकी साम्राज्यवाद के दुनिया में प्रभुत्व के हथियारों में डालर प्रमुख है। डालर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और लेन-देन में दशकों से सर्वमान्य मुद्रा बना हुआ है।

डालर की दुनिया की अन्य मुद्राओं के सापेक्ष यह स्थिति अमेरिकी साम्राज्यवाद को विशिष्ट अधिकार प्रदान करती है। डालर के कारण यह सम्भव हो

रहा है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था जो राजस्व व व्यापार घाटे के साथ ऋणग्रस्तता की शिकार है, वो इसके बावजूद गम्भीर संकट की शिकार होकर ध्वस्त नहीं हुई है। अमेरिका अपने व्यापार व राजस्व घाटे को डालर छापकर पूरा कर लेता है किसी भी अन्य देश के ऐसा करने पर वहाँ मुद्रास्फीति बहुत तेजी से बढ़ती और उस देश की अर्थव्यवस्था गम्भीर संकट का शिकार हो जाती । अतीत में साम्राज्यवादी देशों से लेकर तीसरी दुनिया के कई देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ ऐसा हो चुका है। डालर की सर्वोच्चता तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा के रूप में स्वीकार्यता के कारण ही यह होता है कि डालर में आये उतार-चढ़ाव से पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्थायें प्रभावित होती हैं। अमेरिका का संकट विश्व संकट बन जाता है। इससे अमेरिका की अर्थव्यवस्था पर दबाव कम हो जाता है।

डालर की सर्वोच्चता को पहली गम्भीर चुनौती बीसवीं सदी में '70 के दशक में मिली थी जब डालर-स्वर्ण मान टूट गया था। दूसरी गम्भीर चुनौती अमेरिकन डालर को बीसवीं सदी के अन्तिम वर्षो में यूरो के प्रादुर्भाव से मिली है। 1999 में यूरोपीय यूनियन में शामिल कई देशों ने यूरो को अपनी साझी मुद्रा के रूप में स्वीकार कर लिया।

यूरोपीयन यूनियन के देशों में जिन्होंने अभी तक यूरो को अपनी मुद्रा के रूप में स्वीकार नहीं किया है उन देशों पर यूरो को स्वीकार करने को लेकर दबाव है। ब्रिटेन और स्वीडन जैसे देशों में, यूरो को स्वीकारने को लेकर, इन देशों के शाासक वर्गो में तीखे अन्तर्विरोध मौजूद हैं। यूरोपीय यूनियन में शामिल होने बाले देशों की संख्या लगातार बढ़ने से इन देशों पर भारी दबाव है तथा इससे अमेरिकी साम्राज्यवादियों पर भी दबाव पड़ रहा है।

यूरो यदि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार और तेल व्यापार से डालर को हटाता है और डालर का स्थान लेता है तो अमेरिकी अर्थव्यवस्था को बहुत नुकसान पहुँचेगा और अमेरिकी साम्राज्यवाद की सर्वोच्चता की स्थिति में परिवर्तन आ जायेगा।

पूरी दुनिया में सालाना तेल व्यापार 600 डालर अरब से अधिक होता है और यह कुल विश्व व्यापार का दस फीसदी है। अभी तक इस तेल व्यापार के मुख्यतः डालर में होने से अमेरिकी साम्राज्यवाद का वर्चस्व बना रहा है और तेल उत्पादन करने वाले देशों में चाहे अमेरिकी बहुराष्ट्रीय तेल कम्पनियां मौजूद ना रही हों लेकिन डालर के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व लेन-देन की मुद्रा होने के चलते उन्हें डालर की आवश्यकता होती थी और वे अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रभाव में न चाहते हुये भी आ जाते थे। यूरोपीय व अमेरिकी बैंकों में धन जमा करने अथवा ऋण के लेन-देन के लिए भी डालर आवश्यक था, जिसके कारण पेट्रो-डालर नामक संज्ञा अस्तित्व में आयी। 1999 में फ्रांस ने इराक को इस बात के लिए राजी किया कि वे डालर के बजाय यूरो को तेल के भुगतान के रूप में स्वीकार करेंगे तो इसने डालर की हैसियत को गिराना शुरु कर दिया और तेल उत्पादन करने वाले तथा अन्य देशों के लिए विकल्प उपलब्ध करा दिये। इराक की देखा-देखी ईरान, वेनेजुएला और अफ्रीका के कई देश यूरो को स्वीकारने की ओर बढ़े हैं। तेल व्यापार व अन्य व्यापार तथा यूरोपीयन यूनियन के देशों के बैंकों से लेन-देन करने पर पैट्रो-यूरो अस्तित्व में आ सकता है जो पैट्रो-डालर के वर्चस्व को तोड़ देगा। रूस यूरोप के साथ अपने तेल व अन्य व्यापार को यूरो में करने की ओर बढ़ रहा है। क्यूबा जैसे मुल्क भी ऐसा कर रहे हैं। अमेरिका को इससे बड़ा खतरा है। अमेरिका की अर्थव्यवस्था ऋणग्रस्तता की शिकार है और वह दुनिया में सबसे ज्यादा ऋणग्रस्त देश है। अमेरिका पर घरेलू और विदेशी ऋण कुल मिलाकर 3.4 ट्रिलीयन डालर है जिसे दूसरे शब्दों में यूं कहा जा सकता है कि प्रत्येक अमेरिकी पर 12,000 डालर का ऋण है। यूरो के लगातार डालर के मुकाबले मजबूत होने से अमेरिका का संकट गहरा सकता है। डालर छापने से अब संकट को विलम्बित नहीं किया जा सकेगा।

1999 में जब यूरो अस्तित्व में आया था तब डालर के मुकाबले इसकी विनिमय दर अधिक थी। एक यूरो के बदले 1.20 डालर रहा था लेकिन सामान्य कुछ छोटे उछाल के साथ यूरो डालर के मुकाबले 2001 तक लुढ़कता चला गया और एक समय 2001 में तो एक यूरो 0.80 डालर के निम्न स्तर तक पहुँच गया था लेकिन उसके बाद से यूरो मजबूत होता चला गया है। और यह आज (मई, 2003 में) एक यूरो 1.15 डालर के बराबर है और उसमें उछाल का रुख जारी है। इस सम्बन्ध में यह कहना उचित होगा कि यह यूरोपीय यूनियन की बढ़ती ताकत को कम अमेरिका की कमजोरी का अधिक प्रतीक है। अमेरिकी अर्थव्यवस्था सन् 2001 से मंदी की शिकार है और नब्बे की दशक की अमेरिकी अर्थव्यवस्था की सनातन मजबूती की ओर बढ़ने की भविष्यवाणियां झूठी साबित हो गयी हैं।

V
तीसरी दुनिया के शासकों की भूमिका

तीसरी दुनिया के अधिकांश शासकों ने इराक पर अमेरिकी व ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के हमले और कब्जे का न तो खुलकर समर्थन और न ही खुलकर विरोध किया। भारतीय शासकों की तरह ''मध्यमार्ग'' का अनुसरण किया। संयुक्त राष्ट्र संघ से लेकर गुट निरपेक्ष आन्दोलन जैसे सभी अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में तीसरी दुनिया के शासकों ने 'वेट एण्ड सी' पालिसी का परिचय दिया।

तीसरी दुनिया के अधिकांश शासकों ने घोर तटस्थता का रुख अपनाया। बदलती हुयी स्थितियों के अनुरूप उतनी ही चालें चली जितने की सम्भावना साम्राज्यवादियों के आपसी अन्तरर्विरोधों, दुनिया में जनता के साम्राज्यवाद के विरोध, तीसरी दुनिया के शासकों की आपसी एकजुटता तथा साम्राज्यवाद से सौदेवाजी की उनकी हैसियत से उन्हें मिल सकती थी।

तीसरी दुनिया के तमाम शासक जो विरोध कर रहे थे, वे विरोध को वहां तक भी नहीं ले जाना चाहते थे कि जहां अमेरिकी साम्राज्यवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से रिश्ते कटु होते हैं और वे अमेरिकी-ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ खड़े भी नहीं होना चाहते थे क्योंकि वे जानते हैं कि साम्राज्यवाद का बढ़ता वर्चस्व उनके खिलाफ है। ज्यादातर तीसरी दुनिया के शासक इस बात के पक्षधर थे कि इराक में अगर कोई कार्यवाही की जानी है तो वो संयुक्त राष्ट्र संघ के तहत हो।

तीसरी दुनिया के शासकों और साम्राज्यवाद के सम्बन्ध में जो चीज महत्वपूर्ण है वह उनके सम्बन्ध की प्रकृति। आज तीसरी दुनिया के शासक वर्ग-पूंजीपति वर्ग तीसरी दुनिया में साम्राज्यवाद के सामाजिक आधार हैं। वे साम्राज्यवाद के साथ विश्व पैमाने पर अतिरिक्त मूल्य के दोहन में जूनियर पार्टनर है। अपने-अपने देशों की जनता का शोषण करने में वे साम्राज्यवाद की मदद लेते हैं और साम्राज्यवाद भी इनके मार्फत अतिलाभ कमाता है।

साम्राज्यवाद तीसरी दुनिया में अपने सीनियर पार्टनर और जूनियर पार्टनर के रिश्ते को बनाये रखने और अपनी सीनियर हैसियत को बढ़ाने के लिये दबाव का इस्तेमाल करता है। इराक में उसका सैनिक हस्तक्षेप उसकी इसी रणनीति का हिस्सा है। इराक में सद्दाम हुसैन और उसके वर्ग के सदस्य अमेरिकी व ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को प्रवेश नहीं करने देना चाहते थे। यदि वो प्रवेश करने भी देते तो पर्याप्त सौदेबाजी के बाद। यद्यपि ऐसा नहीं है कि इराक को सद्दाम हुसैन साम्राज्यवाद की गिरफ्त से बाहर रख सकता था या वो सन् '56 का नासिर भी किसी वक्त बन सकता था। सद्दाम फ्रांसिसी-जर्मनी-रूसी साम्राज्यवाद के साथ अपने रिश्ते मजबूत कर रहा था। साम्राज्यवादियों का यह धड़ा आर्थिक-सैनिक दृष्टि से कमजोर था। अमेरिकी-ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने इराक को इस गुट के प्रभाव में

जाने से सीधे सैनिक कार्यवाही करके रोका और अपने प्रभाव में ले लिया। और उस हद तक गया कि उस पर कब्जा कर लिया।

इराक पर आक्रमण और कब्जे की घटना के दौरान तीसरी दुनिया के शासकों का व्यवहार जिस बात को दिखलाता है कि दुनिया आज आर्थिक नव-औपनिवेशिक चरण में पहुँच गयी है। तीसरी दुनिया के अधिकांश शासक एक सम्प्रभु राष्ट्र की तरह निर्णय लेते हैं और अपने वर्गीय हितों से प्रस्थान करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ में तीसरी दुनिया के शासकों का व्यवहार यही दिखलाता है।

सुरक्षा परिषद के दस अस्थायी सदस्यों में से सात सदस्य तीसरी दुनिया के थे। इन सात देशों में तीसरी दुनिया के विभिन्न श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने वाले देश थे। इन देशों में हैं, मैक्सिको, चिली, पाकिस्तान, सीरिया, अंगोला, कैमरून और गियाना। अमेरिका और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सारे दबाव के बावजूद, ये देश संयुक्त राष्ट्र संघ में उनके साथ खड़े नहीं हुये, और अमेरिका को बगैर संयुक्त राष्ट्रसंघ की सहमति के इराक पर आक्रमण करना पड़ा।

इराक के इर्द-गिर्द के राष्ट्रों ने अमेरिका व ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समर्थन की कीमत वसूली। तुर्की के शासक इराक पर आक्रमण होने के बाद भी अमेरिका साम्राज्यवाद के साथ नहीं खड़े थे। सौदेबाजियां चलती रही और अंत में तुर्की के शासक भारी अनुदान हासिल करने के बाद ही इस बात के लिए राजी हुये कि अमेरिका तुर्की के हवाई क्षेत्र को इस्तेमाल करेगा। सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, जार्डन, मिस्र, आदि देशों के शासकों की भी कमोबेश यही भूमिका रही । पाकिस्तान के ऊपर '98 से लगाये गये कई प्रतिबन्धों को अमेरिकी साम्राज्यवाद ने समाप्त कर दिया। पाकिस्तान के कर्ज माफ किये गये और अनुदानों की घोषणा इस दौरान की गयी। तीसरी दुनिया के कई देशों के शासकों ने इराक में अमेरिका के पक्ष में खड़े होने या तटस्थता का रूख अख्तियार करने में सौदेबाजियां की और अपने हित साधने में इस अवसर का लाभ उठाया।

भारत के पूंजीपति वर्ग ने इस पूरे दौरान घोर तटस्थता का रूख अपनाया। भारत के शासक वर्ग ने अमेरिका व ब्रिटेन की आलोचना तक नहीं की। यह घटना उसके लिये मात्र 'दुर्भाग्यपूर्ण' थी। भारत का समूचा शासन वर्ग एकजुट था। भारत ने घोषित तौर पर मध्यमार्ग की पालिसी को अपनाया। सारतः भारत का बुर्जुआ वर्ग इराक के साथ खड़ा न होकर अमेरिकी साम्राज्यवाद के साथ था। उसके द्वारा अपनाई गई अवस्थिति का यह परिणाम था। भारत का बुर्जुआ वर्ग इस बात का पक्षधर है कि दुनिया बहु ध्रुवीय हो, साम्राज्यवादी बंटे हों ताकि इसे सौदाबाजी करने का मौका मिले और दबाव भी कम हो तथा इसके विकल्प भी खुले रहें। परन्तु आज भारत का शासक वर्ग अमेरिकी साम्राज्यवाद के साथ करीबी का रिश्ता बनाया हुआ है साथ ही वह यूरोपीय यूनियन और रूसी साम्राज्यवादियों के साथ भी रिश्ते बनाकर रखा हुआ है। गुटनिरपेक्षता की नीति इसके वर्गीय हितों के अनुरूप है। गुट-निरपेक्षता की नीति के लिए ये आवश्यक है कि दुनिया में गुट हों। फ्रांस-जर्मनी-रूस के अमेरिका विरोधी गुट बनाने की सम्भावना बनते ही गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सदस्य सक्रिय हो गये। फिलहाल फ्रांस, जर्मनी, रूस के पीछे हटते ही गुट-निरपेक्षता की नीति व आन्दोलन अधिक प्रभावी नहीं है।

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अपनी प्रांसगिकता नब्बे के दशक में खो रहा था परन्तु बहु ध्रुवीय व्यवस्था के उभरते ही इसमें पुनः प्राण का संचार हो जायेगा। तीसरी दुनिया के शासक अपनी सौदेबाजी साम्राज्यवाद से बढ़ा सकेंगे और उनके विकल्प खुल जायेंगे।

वर्तमान अर्थिक नव-औपनिवेशिक चरण में इराक पर अमेरिकी व ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा हमला बोला गया और उस पर कब्जा किया गया है। इराक की जनता के प्रतिरोध तथा शासक वर्ग की फूट के कारण अभी साम्राज्यवादी अपनी

मनचाही सरकार कायम नहीं कर पा रहे हैं। अमेरिका व ब्रिटिश साम्राज्यवादी अप्रैल के बाद से अभी तक कठपुतली सरकार भी कायम नहीं कर सके हैं। सीधे अपनी सेना के दम पर इराक पर किसी तरह से नियंत्रण किये हुए हैं। अपने रूप में उपनिवेश सा दिखने के बावजूद इराक में या दुनिया के अन्य हिस्सों में उन्नीसवीं-बीसवीं सदी के जैसे उपनिवेश कायम करना साम्राज्यवाद के लिये सम्भव नहीं है। इराक अभी संक्रमण काल से गुजर रहा है।

वैसे इतिहास की गति सरल रेखीय गति नहीं होती है। वास्तव में इतिहास आगे-पीछे, आड़े-तिरछे, वक्र आदि किस्म-किस्म की गतियों के साथ आगे बढ़ता है। साम्राज्यवाद के तीसरी दुनिया के हितों को भी एक सरल रेखीय गति का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ना मानना गलत होगा। उपनिवेश-नवउपनिवेश-अर्थिक नवउपनिवेश को एक सरल रेखीय गति के रूप में देखना गलत होगा। यह इतिहास का विद्रूपीकरण होगा। आर्थिक नव-औपनिवेशिक चरण आम व मूल गति को दिखलाता है परन्तु इसमें भी उपनिवेश के विशिष्ट या अपवादस्वरूप अन्य रूप मौजूद हो सकते हैं। साम्राज्यवाद नव-उपनिवेश कायम करने में कहीं समय विशेष के लिए सफल हो सकता है। हो सकता है, कहीं पर वो थोड़े समय के लिए उपनिवेश भी कायम कर ले परन्तु यह अपवादस्वरूप या पूरे दुनिया के सन्दर्भ में मामूली घटना होगी। पूरी दुनिया को उन्नीसवी सदी में लौटाना सम्भव नहीं है। अपने समग्र रूप में साम्राज्यवाद कमजोर हुआ है यद्यपि नब्बे के दशक से वो तात्कालिक तौर पर आक्रामक हुआ है।

अमेरिकी साम्राज्यवाद के नब्बे के दशक में किये गये सैनिक हस्तक्षेप सामान्यतया उन देशों में हुए है जो अन्यान्य कारणों से कमजोर थे। सोमालिया, यूगोस्लाविया, अफगानिस्तान और इराक ऐसे ही देश थे, जो पहले से ही कमजोर थे। साम्राज्यवाद का सामान्य हमला भी यह सह न सके और उसकी गिरफ्त में फंस गये। लेकिन इसकी उलट घटना भी दिखायी देती है। वेनेजुएला ने सीधे अमेरिकी हितों को चुनौती दी। अमेरिकी साम्राज्यवादी चाह कर भी वहां सैनिक हस्तक्षेप नहीं कर सके तथा चावेज की अमेरिकी-साम्राज्यवाद विरोधी सरकार को नहीं हटा सके। ऐसे कई अन्य उदाहरण हैं। दुनिया के अधिकांश नव-उपनिवेश आज अर्थिक नव-उपनिवेश बन चुके हैं। इन देशों में आर्थिक नव-उपनिवेश से मुक्ति का कार्यभार समाजवाद निर्माण के कार्यभार के साथ अभिन्न रुप से जुड़ा है। राष्ट्रवाद के सबसे जुझारू किस्म भी किसी देश को साम्राज्यवाद के चंगुल से मुक्त नहीं करा सकती। केवल समाजवाद ही साम्राज्यवाद से निर्णायक विच्छेद कर सकता है और साम्राज्यवाद को चुनौती दे सकता है। पूरी दुनिया से साम्राज्यवाद और पूंजीवाद की पूरी तरह से समाप्ति, पूरी दुनिया में समाजवाद की स्थापना के साथ ही होगी।

इराक पर किये गये हमले और कब्जे का व्यापक प्रभाव पश्चिम एशिया में पड़ेगा। अमेरिकी साम्राज्यवादियों की उपस्थिति का सीधा लाभ इजरायल के प्रतिक्रियावादी शासकों को मिलेगा।

आज की परिस्थितियों का लाभ उठाकर अमेरिकी साम्राज्यवादी और अरब दुनिया में उसका विश्वस्त सहयोगी इजरायल के प्रतिक्रियावादी शासक अपने मनमुताबिक फिलिस्तीनी राज्य का निर्माण कर डालना चाहते हैं। अमेरिका व इजरायल फिलिस्तीनी आथोरिटी के नेतृत्व को अपनी योजनाओं के हिसाब से, पिछले दिनों बदलने में सफल हुये हैं। यद्यपि यासिर अराफात भी समझौतापरस्त था लेकिन अमेरिका और इजरायल को वह स्वीकार नहीं था। अब्बास, यासिर अराफात से ज्यादा समझौतापरस्त तथा अमेरिका और इजरायल का विश्वस्त है तथा फिलस्तीनी जनता के खिलाफ किये जा रहे षडयंत्र में उनके साथ शामिल हो गया है। 2005 में जो भी फिलिस्तीनी राष्ट्र अस्तित्व में आयेगा वह फिलिस्तीन के मेहनतकशों की आंकाक्षाओं के खिलाफ होगा।

अमेरिका की मौजूदगी से सीरिया, लीबिया व ईरान पर दबाव बढ़ेगा। पश्चिम एशिया में तुर्की, मिस्र, जार्डन, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, कुवैत पहले से ही अमेरिकी-साम्राज्यवाद के साथ कम और ज्यादा खड़े हैं। इन देशों के शासक पहले ही प्रतिक्रियावादी हो चुके हैं तथा साम्राज्यवाद के साथ सांठगांठ कर रहे हैं। इन देशों के शासकों ने अब अरब राष्ट्रवाद के नारे लगाना छोड़ दिया हैं। अरब राष्ट्रवाद पहले ही प्रतिक्रियावादी नारा बन चुका है अब उसके आधार पर प्रतिक्रियावादी शासक अपने देश की जनता को खड़ा नहीं कर सकते हैं। पूरे इराक संकट के दौरान अपने शासकों के व्यवहार से इन देशों की जनता वाकिफ है। इराक की अधिकांश जनता की तरह इन देशों की जनता भी साम्राज्यवाद और देशी शासकों की सत्ता के खिलाफ नारा लगा सकती है और अवश्य ही लगायेगी। पूरे अरब की जनता की इराक युद्ध और कब्जे के दौरान की भूमिका की चर्चा आगे के पृष्ठों में की गयी है।

VI

साम्राज्यवादी आक्रमण का प्रतिरोध और उसका चरित्र

अफगानिस्तान पर कब्जा करने के बाद अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने अपने इरादे जाहिर कर दिये थे। जैसे ही शैतानी ध्रुव (axis of evil)की घोषणा की गई तो दुनिया की जनता और प्रगतिशील व क्रांतिकारी तत्व सचेत हो गये थे कि अब अमेरिकी-साम्राज्यवादी पहले इराक फिर अन्य देशों पर आक्रमण करेंगे। अमेरिकी साम्राज्यवादियों की योजनाओं की भनक लगते ही पूरी दुनिया में विरोध शुरू होने लगा।

अगस्त 2002 से पूरी दुनिया में विरोध प्रदर्शन होने लगे थे और यह प्रदर्शन निरन्तर बढ़ते चले गये। इन प्रदर्शनों में भाग लेने वालों की संख्या सैकड़ों से हजारों और हजारों से लाखों में पहुँच गई। 2003 में जनवरी, फरवरी, और मार्च महीनों का शायद ही कोई दिन रहा हो जिस दिन लोग सड़कों में न उतरें हों। 15 फरवरी 2003 को तो पूरी दुनिया में जनता ने मिलकर इतिहास के अब तक के सबसे बड़े प्रदर्शन में हिस्सा लिया। इसकी दो प्रमुख खासियतें रही हैं, पहली कि इन प्रदर्शनों में भागीदारी करने वाले लोगों की विशाल संख्या और दूसरी इन प्रदर्शनों का फैलाव लगभग-लगभग पूरी दुनिया में था। 15 फरवरी के दिन दुनिया के 2000 से अधिक बड़े शहरों में प्रदर्शन हुए और इनमें भागीदारी करने वाले लोगों की संख्या डेढ़ करोड़ से भी अधिक थी। इन प्रदर्शनों की एक बड़ी विशेषता रही है कि ये प्रदर्शन साम्राज्यवादी देशों में अधिक हुए हैं। 15 फरवरी के दिन इटली के राजधानी रोम में दस लाख, लन्दन में दस लाख, मेलबोर्न में दो लाख, बर्लिन में पांच लाख, न्यूयार्क में चार लाख, मांट्रियल में एक लाख, ऐसे ही तमाम अन्य शहरों में हजारों, लाखों सड़कों पर उतरे हुए थे। ऐसा नहीं है कि 15 फरवरी के बाद विशाल प्रदर्शन रूक गये थे बल्कि वे लगातार जारी रहे और पूरे युद्ध के दौरान जारी रहे और आज भी हो रहे हैं। 20 मार्च को पूरी दुनिया में फिर से विशाल प्रदर्शन हुए।

इन प्रदर्शनों में भागीदारी करने वाले मजदूर, कर्मचारी,महिलायें,विधार्थी और जनता के अन्य हिस्से शामिल थे।

अमेरिका में हुए प्रदर्शनों में मजदूरों की विशाल संख्या रही है। एक बड़ी घटना यह घटी है कि अमेरिका की सबसे बड़ी ट्रेड यूनियन फैडरेशन A FL-CIO ने युद्ध का विरोध किया। इस ट्रेड यूनियन ने कहा कि बुश यह साबित नहीं कर सका कि क्यों इराक पर आक्रमण किया जाये। इस घटना का महत्व इसलिए भी बढ़

जाता है कि यह ट्रेड यूनियन फेडरेशन वियतनाम युद्ध के समय अमेरिकी साम्राज्यवादी सरकार के साथ था और उस वक्त इसने युद्ध के समर्थन में प्रस्ताव पारित किये थे। एक अन्य रिर्पोट के अनुसार 400 यूनियनों का प्रतिनिधित्व करने वाले नेताओं ने युद्ध के विरोध में कड़ा प्रस्ताव लिया था। ये 400 यूनियनें अमेरिका की 30 फीसदी संगठित मजदूरों का प्रतिनिधित्व करती थी और इन यूनियनों की सदस्य संख्या कुल मिलाकर 45 लाख तक पहुँच जाती है।

इसी तरह की घटना यूरोप में भी घटी है। यूरोपीयन ट्रेड यूनियन कान्फेडरेशन (ETUC) ने इस युद्ध का विरोध किया। इस यूनियन ने पूरे यूरोप के मजदूरों का आह्वान किया कि वे युद्ध में विरोध में 14 मार्च के दिन ठीक दोपहर के वक्त पूरे यूरोप में काम रोक दें और इस अपील का असर पूरे यूरोप में हुआ।

अमेरिका तथा अन्य साम्राज्यवादी देशों में होने वाले प्रदर्शनों में मजदूरों, नौजवानों और अन्य नागरिकों की बढ़ती भागीदारी के पीछे इन देशों का गहराता आर्थिक संकट है। कल्याणकारी राज्य की भूमिका से ये सभी देश क्रमशः पीछे हटते चले गये हैं। पिछले कुछ वर्षों में तेल के दामों में वृद्धि का प्रभाव सीधे जनता पर पड़ा था, तब बड़े पैमाने पर ब्रिटेन, स्पेन आदि देशों में प्रदर्शन हुये थे।

अमेरिका, ब्रिटेन, इटली, स्पेन, आस्ट्रेलिया जैसे साम्राज्यवादी देशों में होने वाले विरोध प्रदर्शनों का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि इन देशों के शासक वर्ग इराक पर हमले और कब्जे का समर्थन कर रहे थे और 20 मार्च को तो इराक पर हमला ही बोल दिया गया और बाद में कब्जा कर लिया गया।

फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम, रूस जैसे साम्राज्यवादी देश जो इराक पर किये जाने वाले आक्रमण और कब्जे का विरोध कर रहे थे, इन देशों में होने वाले प्रदर्शनों का महत्व इस मामले में अधिक है कि इन प्रदर्शनों ने इन देशों की सरकारों को युद्ध के विरूद्ध खड़े होने में, एक दबाव का काम किया। अपनी बारी में इन देशों की सरकारों ने इन प्रदर्शनों का दमन नहीं किया। यद्यपि यहीं पर यह बात समझ लेनी चाहिये कि इन देशों की सरकारों और जनता के विरोध की जमीन अलग-अलग ही नहीं बल्कि बिल्कुल विपरीत थी।

फ्रांस में होने वाले प्रदर्शनों में शामिल होने वालों में एक बड़ा भाग अफ्रीका, अरब व एशिया के देशों से आकर बसे उत्प्रवासियों तथा मजदूरों का था जो साम्राज्यवादी उत्पीड़न का लम्बे समय से शिकार रहे हैं। फ्रांस में वर्षों से फिलिस्तीन के समर्थन में होने वाले प्रदर्शनों में ये बढ़-चढ़ कर हिस्सेदारी करते रहे हैं।

साम्राज्यवादी देशों में होने वाले प्रदर्शनों में बड़ी संख्या में नौजवानों और छात्रों ने भागीदारी की है। अमेरिका में हजारों की संख्या में छात्रों ने इन प्रदर्शनों में भागीदारी की है और हड़तालें आयोजित की हैं। यही स्थिति ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन, इटली, आस्ट्रेलिया जैसे देशों में भी रही है। छात्र व नौजवान मांग कर रहे थे कि युद्ध के ऊपर खर्च किये जाने वाले धन को शिक्षा और रोजगार पर खर्च किया जाना चाहिये।

इन प्रदर्शनों में भागीदारी करने वालों में तमाम तरह के विचारों को मानने लोग थे। मानवतावादी, शान्तिवादी, पर्यावरणवादियों से लेकर साम्राज्यवाद-पूंजीवाद के विरोधी, इन प्रदर्शनों में शामिल थे। साम्राज्यवाद और पूंजीवाद का विरोध करने वालों में सामाजिक-जनवादियों से लेकर क्रांतिकारी शामिल थे। अमेरिका, ब्रिटेन में शासक वर्ग के भी लोग इन प्रदर्शनों में शामिल हुये थे।

विभिन्न विचारधाराओं और वर्ग के इन लोगों के विरोध का एक वस्तुगत परिणाम यह निकला कि अमेरिकी व ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को अपने देश तथा पूरी दुनिया में प्रचण्ड विरोध का सामना करना पड़ा तथा वे अलगाव में पड़े। बुश-ब्लेयर का सारा पाखण्ड उजागर हो गया तथा इन शासकों तथा इनकी नीतियों के खिलाफ

इन देशों में नफरत और गुस्सा पहले से बढ़ा है। इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ में यह एक ऐसी घटना है जिसे अवश्य ही रेखांकित किया जाना चाहिये तथा इसके महत्व व प्रभाव को चिन्हित किया जाना चाहिये।

तीसरी दुनिया में इराक पर हमले और कब्जे का व्यापक विरोध हुआ। बड़े प्रदर्शन आयोजित किये गये। दक्षिण कोरिया,इण्डोनेशिया, भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि एशिया के देशों के अलावा अफ्रीका, लेटिन अमेरिका के देशों में बड़े प्रदर्शन हुये। इन प्रदर्शनों में दक्षिण कोरिया और इजरायल में हुये प्रदर्शनों का अपना महत्व है। दक्षिण-कोरिया में हाल के वर्षों में अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ गुस्सा बढ़ा है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से मौजूद अमेरिकी सेनाओं को देश से बाहर किये जाने की मांग जोर पकड़ रही है। इजरायल में किये गये प्रदर्शनों का महत्व इसलिये ज्यादा है कि इजरायल की सरकार और शासक वर्ग इराक पर हमले व कब्जे का न केवल खुलकर समर्थन कर रहा है बल्कि वह इसकी जद में सीरिया, ईरान, लीबिया आदि मुल्कों को भी लाना चाहता है। ये सभी देश ऐसे हैं, जहाँ की जनता के अलावा शासकों का भी इराक की तरह ही फिलिस्तीनियों के मुक्ति संघर्ष, को अन्य अरब देशों के शासकों के मुकाबले अधिक सक्रिय समर्थन रहा है।

अरब देशों - सीरिया, जार्डन, सऊदी अरब, मिस्र, लीबिया, इराक, आदि में इस युद्ध और कब्जे का व्यापक विरोध का सिलसिला जारी है। इराक में सद्दाम हुसैन की सत्ता के पतन को सारे अरब जगत के शासकों ने चेतावनी में रुप में देखा है परन्तु वह चाह कर भी साम्राज्यवाद का जुझारू विरोध नहीं कर सकते है। इन सभी देशों के शासक घोर प्रतिक्रियावादी है। साम्राज्यवाद से इन सभी देशों के घनिष्ठ रिश्ते हैं। इन देशों की जनता की साम्राज्यवाद विरोधी भावनाएं इस्लामिक धार्मिक भावनाओं के साथ आज घुल-मिल गयी है। इस्लामिक कट्टरपंथ साम्राज्यवाद के लिये चुनौती बनने के बजाय साम्राज्यवाद की सेवा करता है और जनता पर प्रतिक्रियावादी शासकों के शोषण-उत्पीड़न को ही बढ़ाता है।

इराक की जनता का प्रतिरोध जारी है। हर दूसरे दिन इराक की जनता द्वारा अमेरिकी व ब्रिटिश सेनाओं से लोहा लेने की खबरें आ रही है। बड़े-बड़े प्रदर्शन इराक में हो रहे हैं। अमेरिकी व ब्रिटिश साम्राज्यवादी सोच रहे थे कि इराक की जनता अपने इन तथाकथित मुक्तिदाताओं का स्वागत उनके गले में फूलों का हार डाल के करेगी परन्तु उनका स्वागत गोलियों और बड़े-बड़े जन-प्रदर्शनों से हो रहा है। इराक के प्रमुख शहरों के अलावा इराक में कब्जा पूरे तरह से नहीं हो पा रहा है। इराक की जनता ने साम्राज्यवादियों को हैरान करना जारी रखा हुआ है। इराक की जनता साम्राज्यवादियों की चालों को समझ रही है। कुर्द, शिया, सुन्नी, आसीरियाई आदि खेमों में विभाजित करने की चालों में, न पड़ने का आह्वान हो रहा है।

इराक की जनता का साम्राज्यवाद विरोध का एक लम्बा इतिहास हैं। बीसवीं सदी में दुनिया की प्रमुख साम्राज्यवादी शक्ति से आजादी उन्होंने लड़कर हासिल की थी। गौरवशाली इतिहास उन्हें प्रेरणा देगा। इराक की जनता का प्रतिरोध आश्वस्त भी करता है कि साम्राज्यवादियों को अंततः इराक की धरती से वैसे ही जाना होगा जैसे कभी वे वियतनाम से गये थे।

इराक की मेहनतकश जनता के सामने जो चुनौती है, वह है, एक ऐसे संघर्ष की नींव रखना जो अपने चरित्र में साम्राज्यवाद और पूंजीवादी विरोधी हो। जिसका घ्येय पुनः इराक में किसी सद्दाम हुसैन या पूंजीपति वर्ग की सत्ता कायम करने के स्थान पर अपनी सत्ता कायम करने का हो। सर्वहारा तानाशाही स्थापित करने का हो। समाजवाद की स्थापना करने का हो। साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के

शोषण–उत्पीड़न से पूर्ण मुक्ति का हो। ऐसा होते ही इराक पुनः मानव सभ्यता का केन्द्र बन जायेगा।

इराक की घटना ये भी साबित किया है कि आज की दुनिया के तीनों बुनियादी अंतरविरोध श्रम और पूंजी, साम्राज्यवाद और उत्पीड़ित देशों/राष्ट्रों, साम्राज्यवादियों के बीच का आपसी तथा इजारेदारियों के बीच का आपसी अंतरविरोध तीखे हुये हैं। श्रम और पूंजी का अंतरविरोध आज की दुनिया का प्रधान अंतरविरोध है। जैसे ही यह अंतरविरोध श्रम के पक्ष में हल होगा वैसे ही एक नयी दुनिया–समाजवाद की दुनिया जन्म ले लेगी।

□ □ □